सहजानंद शास्त्रमाला

पंचाध्यायी प्रवचन

भाग 5

रचयिता

अध्यात्मयोगी, न्यायतीर्थ, सिद्धान्तन्यायसाहित्यशास्त्री

पूज्य श्री क्षु० मनोहरजी वर्णी "सहजानन्द" महाराज

प्रकाशक

श्री सहजानंद शास्त्रमाला, मेरठ

एवं

श्री माणकचंद हीरालाल दिगम्बर जैन पारमार्थिक न्यास

गांधीनगर, इन्दौर

Online Version : 001

पञ्चाध्यायी प्रवचन

[भाग ३, ४, ५]

प्रवक्ता :
अध्यात्मयोगी न्यायतीर्थ पूज्य श्री १०५ क्षुल्लक
श्री मनोहर जी वर्णी 'सहजानन्द जी' महाराज

प्रबन्ध-सम्पादक :
बैजनाथ जैन, ट्रस्टी सदस्य सहजानन्द शास्त्रमाला
यादगार बड़तला, सहारनपुर

●

प्रकाशक :
मंत्री, सहजानन्द शास्त्रमाला
१८५ ए, रणजीतपुरी, सदर मेरठ

●

मुद्रक :
पं० काशीराम शर्मा 'प्रफुल्लित'
साहित्य प्रेस सहारनपुर

सन् १९७२] सर्वाधिकार सुरक्षित [न्योछावर ५ रु.

पञ्चाध्यायी प्रवचन

[भाग ५]

●

प्रवक्ता :

अध्यात्मयोगी न्यायतीर्थ पूज्य श्री १०५ क्षु. मनोहर जी वर्णी "सहजानन्द महाराज"

●

ननु किमिह जगदशरणं विरुद्धधर्मद्वयाधिरोपत्वात् ।
स्वयमपि संशयदोलान्दोलित इव चलितप्रतीतिः स्यात् ॥४१८॥

विरुद्ध दो धर्मोंके अधिरोपित होनेसे शंकाकारके आशयसे सारे जहान के अशरण हो जानेकी आशंका—सत् और परिणामको दृष्टिमें रखकर जो उक्त प्रकरणोंमें अनेकान्तमय पदार्थोंकी सिद्धि की है और स्याद्वाद शासन पद्धतिसे जिनका विशेष विवरण किया गया है उन सब बातोंको सुनकर यहाँ शङ्काकार यह पूछ रहा है—जब एक ही वस्तुमें परस्पर विरोधी दो धर्मोंको अधिरोपित किया गया है तो इस तरह तो सारा संसार अशरण हो जायगा, क्योंकि स्वयं ही यह मानव संशयके झूलेमें झुलता हुआ चलित प्रतीति बनेगा अर्थात् उसे कहीं विश्वास न जम पायगा। किसी वस्तुको नित्य कहा जाता तो उसीको अनित्य कहा जाय तो सुनने वाला किस विश्वास में रह सकेगा ? तो जब कोई एक विश्वासकी स्थिरता न रही तो ऐसे संशयके झूलेमें झूला हुआ पुरुष अपने धैर्यको खो देगा और न कुछ अपना कल्याण ही कर सकेगा। अतः यह अनेकान्तवाद तो अशरण बनायेगा, इसका आलम्बन जो लेगा वह खुद संशय के झूलेमें झूलता हुआ अपना जीवन बितायेगा, हितका मार्ग नहीं पा सकता। धर्म पालनके लिए तो दृढ़ताकी आवश्यकता होती है। जो पदार्थमें वास्तविक स्वरूप परिज्ञात हो उस स्वरूपपर दृढ़ रह जाय, ऐसी जिसकी प्रतीति निस्कम्प हो वह ही पुरुष धर्म पालनमें आगे बढ़ सकता है लेकिन जहाँ क्षण क्षणमें संशय ही संशय पड़ा हुआ है तो वहाँ न श्रद्धान दृढ़ रह सकता है और न धर्म पालनके लिए अपनी कोई करतूत बना सकता है। तो इस प्रतिपक्ष धर्मकी मान्यतामें कैसे प्रतीति चलित होती है कैसे संशयके झूलेमें झूलना बनता है और किस तरह इसकी अशरणता होती है इस बातके विवरणमें कहते हैं।

इस कश्चिज्जिज्ञासुर्नित्यं सदिति प्रतीयमानोऽपि ।
सदनित्यमिति विपक्षे सति शल्येस्यात्कथं हि निःशल्यः ।४१९।

नित्यताकी प्रतीतिमें अनित्यताकी मान्यताका प्रवेश होनेपर जिज्ञासुकी सशल्यताकी आरेका – कोई जिज्ञासु ऐसी प्रतीति कर रहा हो कि सत् नित्य है तब उसके सामने जब यह विपक्षकी बात आती है कि सत् अनित्य भी है तो इस विपक्षकी बात सुनकर उसका शल्य उपस्थित हो जायगा। बात क्या है? अभी पदार्थ नित्य दिख रहा था, नित्य समझमें आ रहा था। एकदम विपरीत बात कह दी गई कि सत् अनित्य भी है, तो जो सत्की नित्यताका दर्शन हो रहा था उसका अवगम हो रहा था उस ज्ञानमें भी धक्का लगा, अब नई बात सोचनेके लिए चला सो जिस बातके परिज्ञानमें कुछ समय लगाया, अब उसे स्थगित करके नई दूसरी बातके ज्ञान करनेमें चलने लगा तो उसे अब शल्य हो गयी कि तत्त्व क्या है? तत्त्व बताया जा रहा था उसका लोप करके अब दूसरा तत्त्व कहा जा रहा है तो उसके चित्तमें शल्य हो गई और शल्य होनेपर उसे निशल्य कैसे कहा जा सकता है? जो निशल्य नहीं है वह शरणभूत भी नहीं है, अशरण है निशल्यता हुए बिना सम्यक्त्व भी नहीं माना गया है। जो सम्यग्दृष्टि पुरुष होते हैं वे माया, मिथ्या, निदान इन तीन शल्योंसे रहित हुआ करते हैं पर यहाँ तो अभी मिथ्यात्व शल्य भी नहीं छूट सका। वस्तुके किसी परमार्थ स्वरूपका अवधारण भी नहीं किया जा सकता। तो शल्यवान पुरुष सम्यग्दृष्टि ही नहीं हो सकता। वह व्रतपालन क्या करेगा और मोक्षमार्गमें अपना कदम भी क्या बढ़ायेगा? सत् नित्य है समझ रहा था और इस श्रद्धामें दृढ होनेको ही था कि एकदम प्रतिकूल बात सामने उपस्थित हो गई। यह उपदेश होने लगा कि सत् अनित्य भी है तो ऐसे संशयके झूलेमें झूलता हुआ प्राणी स्वयंके लिए शरणभूत नहीं कहा जा सकता। अब और भी शल्यकी बात सुनो!

इच्छन्नपि सदनित्यं भवति न निश्चितमना जनः कश्चित् ।
जीवदवस्थत्वादिह सन्नित्यं तद्विरोधिनोऽप्यत्वात् ।।४२०।।

अनित्यताकी प्रतीतिमें नित्यत्वकी मान्यता होनेपर जिज्ञासुकी अनिश्चित मनस्कताकी आरेका—कोई पुरुष ऐसा समझ रहा था कि सत् अनित्य है तो ऐसे सत्को अनित्य समझनेकी सारी दृष्टियाँ लगानेमें व्याप्त हो रहा था, पर्याय निरख रहा था। हाँ अब यह जीव मनुष्य न रहा, देव हो गया, देव न रहा अब मनुष्य हो गया आदिक रूपसे वह निरख रहा था, विश्वास कर रहा था कि सत् अनित्य है, इसका अभी पूरे तौरसे मनमें निश्चय नहीं कर पाया, इसको समझ ही रहा था और निश्चयतः कुछ सम्यक्त्व ही होनेको था कि एकदम उसके सामने प्रतिकूल बात आयी

कि सत् नित्य है। तो जब इस प्रकार सत् नित्यताकी बात सामने फिर आयी अथवा समझिये कि जो बात पहिले सोच रहा था उसी बातको अब फिर दुहराया तो बीचमें अब अनित्यताकी जो प्रतीति कहनेका था वह चलित हो गई। अब यहाँ संशयके झूले में फिर झूलने लगा कि दूसरा फिर भी जो बताया जा रहा था वह भी दृढ नहीं रह सकता तो इसमें वास्तविकता क्या है ? फिर उसकी पुरानी बात आयी जिसक कि अभी निषेध किया जा रहा था तो वह चलित हो गया अपने श्रद्धानसे संशयके झूलेमें फिर पूर्ववत् झूलने लगा। उसे फिर तत्त्वके अवगमके बारेमें शल्य उत्पन्न हो गयी, वह निशल्य न रह सका और जो निशल्य नहीं है उसको धीरता गम्भीरता धर्ममार्गमें प्रगति करना, यह कुछ भी बात नहीं बन सकती, इस कारण अनेकान्तवादमें तो जो प्रवेश करेगा वह उलझनमें ही पड़ा रहेगा, किसी एक तत्त्वके निर्णयमें नहीं पहुंचता, इस कारण अनेकान्तवादका शरण करने वाला पुरुष अशरण है।

तत एव दुरधिगम्यो न श्रेयान् श्रेयसे ह्यनेकान्तः।
अप्य त्मसुखदोषात् सव्यभिचारो यतोऽचिरादिति चेत्। ४२१।

उक्त आशङ्काओंसे अनेकान्तकी अकल्याणरूपताका कथन – उक्त प्रकारसे जब यह बात निश्चित् हो गयी कि अनेकान्तवादका आश्रय लेने वाले पुरुष संशयके झूलेमें झूलते हैं तब यह अनेकान्त अब दुरभिगम्य हो गया यह जाना ी न जा सका। तो कठिनतासे अधिगम्य होनेसे और संशयके झूलेके झूलनेका साधन होने से वह अनेकान्तवाद स्वयं श्रेयरूप नहीं है, स्वयं अमङ्गल है। इस जीवको उलझनके जङ्गलमें छोड़ देता है और इसी कारण यह अनेकान्त कल्याणकारी भी नहीं है इसका सहारा लेने वाला क्षण-क्षणमें नये-नये विकल्पोंमें झूलता है तो वह किसी निश्चित पथ न होनेके कारण वह अपनी रक्षा ही क्या बना सकेगा ? इस अनेकान्तवादके माननेमें तो अपने मुखसे अपना ही विघात होता है जिसे वह तो व्याघात दोष कहते हैं। स्वयं ही कह रहे और स्वयं ही अपने आपका घात कर रहे जिसे कभी नित्य कहा था अब उस पक्षको छोड़कर अनित्य कहने लगे। तो लो जो बात पहिले कही थी उसको खुद ही मेट दिया और इस तरह यह अनेकान्त सव्यभिचारी दोष होता है, यह निर्दोष नहीं कहा जा सकता। तब ऐसे अनेकान्तवादका शरण लेनेसे यह जगत अशरण बन जाता है। इस प्रकार यहाँ तक उक्त चार गाथाओंमें शङ्काकारका अनेकान्त दोष मिथ्या और अकल्याणकारी सिद्ध करनेका संशय किया। अब उसके समाधानमें कहते हैं

तन्न यदस्तदभावे बलवानस्तीह सर्वथैकान्तः।
सोऽपि च सदनित्यं वा सन्नित्यं वा न साधनायालम्। ४२२।

अनेकान्त न माननेपर कुछ भी सिद्ध न कर सकनेका वर्णन करते हुए शङ्काकारकी उक्त शङ्काका समाधान-- शङ्काकारने अनेकान्तके विशुद्ध स्वरूपको न समझकर जो कुछ भी अनेकान्तमें दोष प्रदर्शित किया है वे सब प्रयास उनके ठीक नहीं है, क्योंकि स्पष्ट बात है कि अनेकान्तका अगर अभाव होगया तो सर्वथा एकांत बन जायगा। अर्थात वस्तुमें जिस किसी भी धर्मको निरखा बस उस धर्मका एकान्त हो जायगा। यह तो एक शब्दश: भी सिद्ध बात है, अनेकान्त नहीं है। इसका अर्थ है कि एकान्त है और वह एकान्त हो जायगा सर्वथा, तो सर्वथा एकान्तमें बात क्या बनी कि पदार्थके सम्बन्धमें यह आग्रह बन बैठेगा कि सत नित्य ही है अथवा कोई दूसरा पुरुष एकान्तका आग्रही यह निर्णय कर बैठेगा कि सत अनित्य ही है, किन्तु विचार करनेपर किसी भी एकान्तमें निर्दोषता सिद्ध नहीं हो सकती और सत् नित्य ही है, सर्वथा नित्य है इस विकल्पके माननेमें कैसे दोष आता है? और कैसे कल्याणका मार्ग रुक जाता है? यह बात अभी आगे बतावेंगे और इस प्रकार सत् सर्वथा अनित्य है, ऐसा कहनेमें भी किसी प्रकारकी दोषापत्तियाँ आती हैं और यह सब धर्ममार्ग रुक जाता है, इस बातका भी वर्णन करेंगे। इस गाथामें यह संकेत दिया गया है कि अनेकान्त अगर न माना जाय तो सर्वथा एकान्त पुष्ट हो जायगा और सर्वथा एकान्त में जो कुछ भी कहा जायगा वह अपनी ही खुदकी सिद्धि करनेमें समर्थ न हो सकेगा। सर्वथा एकान्तवादमें न यह सिद्ध हो सकेगा कि सत् नित्य है और न यह सिद्ध हो सकेगा कि सत् अनित्य है।

सन्नित्यं सर्वस्मादिति पक्षे विक्रिया कुतो न्यायात्।
तदभावेऽपि न तत्त्वं क्रियाफलं कारकाणि यावदिति॥ ४२३॥

नित्यत्वैकान्तमें तत्त्व क्रिया, फल, कारक आदिकी अनुपपत्तिका दोष वह सर्वथा नित्य है, ऐसा पक्ष स्वीकार करनेमें क्या दोष आता है? इसका वर्णन इस गाथामें किया गया है। सत् सर्वथा नित्य है, सब प्रकारसे अपरिणामी है उसमें रंचमात्र भी परिणनन अवस्था दशा व्यक्तरूप नहीं होता, यही तो उस पक्षका अर्थ है। यदि किसी भी प्रकारका परिणमन मान लिया जाय तो वह सर्वथा नित्य तो न कहला सकेगा। उसमें कुछ भी व्यक्तरूप समझा जाय तो व्यक्तरूपके निरखनेपर उन व्यक्तरूपोंमें पूर्वापर समयमें विभिन्नता भी समझमें आयगी, तब वह सर्वथा नित्य तो न कहा जा सका। तो जो पुरुष सर्वथा नित्य कहते हैं उसका अर्थ है कि पदार्थ सर्वथा अपरिणामी है। तो सर्वथा अपरिणामी है तो उसमें विक्रिया तो किसी भी प्रकारका परिणमन, किसी युक्तिसे घटित नहीं किया जा सकता, और जब पदार्थमें कोई विक्रिया ही नहीं मानी गई, बनी ही नहीं तब फिर न तत्त्व रहेगा, न क्रिया, न फलका कारक, कुछ भी सिद्ध नहीं हो सकता। किसी प्रकारका कार्य ही न हो तब

चीज वहाँ क्या रही ? स्वरूप भी सिद्ध न होगा। कोई उसकी क्रिया ही न बनी और जहाँ कुछ भी अर्थक्रिया नहीं वह सत ही क्या रहेगा और उस पदार्थके सत्त्वका फल ही क्या रहा ? उससे व्यवहार भी कुछ नहीं बना और फिर वह परस्परमें कुछ कारक ही न बन सके तो फिर प्रयोजन भी कुछ न रहा। और सीधी बात यह है कि यह सब कुछ दिख रहा है, परिणमन है व्यक्तरूप है कारकपना भी है तो कैसे सिद्ध होगा कि वस्तु सर्वथा नित्य है।

परिणामः सदवस्थाकर्मत्वाद्विक्रियेति निर्देशः।
तदभावे सद्भावो नासिद्धः सुप्रसिद्धदृष्टान्तात् ॥ ४२४ ॥

परिणामका अभाव माननेपर सत्के अभावका प्रसङ्ग - परिणाम ही सत्की अवस्था होनेके कारण विक्रिया इस नामसे कहा जाता है। इसे अवस्था कहो विक्रिया कहो परिणाम कहो, सब एकार्थक शब्द हैं। अब यदि परिणामका सत्में अभाव माना जाता है तो इससे सत्का ही अभाव सिद्ध हो जाता है। यदि पदार्थमें परिणमन नहीं माना जाता तो पदार्थका सत्त्व ही नहीं रह सकता। बहुत कोशिश की अद्वैतवादियोंने अपरिणामी ब्रह्म मानकर। एक ब्रह्म प्रदेश तत्त्व माना है और यों माना कि वह अपरिणामी है उसमें किसी भी प्रकारका विकार परिणमन नहीं होता तो भले ही श्रद्धावश उस ब्रह्मको कोई मानले लेकिन युक्ति और अनुभवमें बात नहीं उतरती कि जिसकी कुछ अवस्था नहीं, जिसका कोई व्यक्त रूप नहीं, जिसकी कोई अर्थक्रिया नहीं, उसका कैसे सत्त्व है ? तो परिणाम न माननेपर सत्का अभाव सिद्ध हो जाता है। इसके लिए अनेक दृष्टान्त प्रसिद्ध हैं। और दृष्टान्त भी अलगसे क्या देना, सभी पदार्थ दिख रहे हैं कि इनका परिणमन है, तब सिद्ध है कि इनके आधारभूत कोई प्रमाण तत्त्व है। परिणमनके माने बिना पदार्थका सत्त्व नहीं ठहरता है।

अथ तद्यथा पटस्य क्रिया प्रसिद्धेति तन्तुसंयोगः।
भाति पटाभावः किल तदभावे यथा तदनन्यात् ॥ ४२५ ॥

परिणामका अभाव माननेपर सत्का अभाव होनेके प्रसङ्गका उदाहरण जैसे - जो तंतुओंका संयोग है वही तो पटकी क्रिया कहलाती है। पटकी परिणति पटकी क्रिया क्या है ? पट बनता किस प्रकार है ? तान और वितान दोनों प्रकारसे सूत्रोंका जो फसाव बनाया जाता है वही तो पटकी क्रिया कहलाती है। यदि तंतुओंका संयोग न माना जाय तो फिर पट ही क्या रहा ? तंतुओंके संयोग बिना कपड़ेका सद्भाव सिद्ध नहीं होता, क्योंकि तंतुओंका संयोग और कपड़ा दोनों भिन्न-भिन्न चीजें नहीं हैं। भिन्न-भिन्न पदार्थोंमें ही यह बात मानी जा सकती कि अमुक पदार्थ नहीं है

तो इससे दूसरे पदार्थोंका अभाव हो जाय, यह नियम न बनेगा ? जैसे—यहाँ घड़ा नहीं है, तो कपड़ा भी नहीं है क्या ? कपड़ा जुदी वस्तु है, घड़ा जुदी वस्तु है, लेकिन घडेमें ही कह बात कही कि इसमें रूप नहीं, रस नहीं, गध नहीं, स्पर्श नहीं । तो फिर घड़ा ही क्या रहेगा ? तो पदार्थका व्यक्तरूप पदार्थसे भिन्न हुआ करता है तो तंतु संयोग न हो तो पट कोई चीज नहीं कहलाती । ऐसे ही व्यक्त रूप न हो तो पदार्थ कुछ भी सत नहीं रह सकता है । इससे सिद्ध है कि प्रत्येक सत् परिणामसे बँधा हुआ है । परिणाम बिना सत्त्व ठहर नहीं सकता और इसी कारणसे सत् और परिणाम इन दोनोंका अविनाभाव सिद्ध कर आये हैं कि सत्के बिना परिणाम नहीं ठहरता और परिणामके बिना सत् नहीं ठहरता ।

अपि साधनं क्रिया स्यादपवर्गस्तत्फलं प्रमाणत्वात् ।
तत्कर्ता न कारकमेतत्सर्वं न विक्रियाभावात् ॥ ४२६ ॥

परिणामका अभाव माननेपर कर्ता, फल, कारकादिका अभावप्रसंग दूसरी बात यह है सत् और परिणामके सम्बन्धमें कि क्रिया तो साधन है और मोक्ष उसका फल है, यह बात प्रमाणसे सिद्ध है और इसीलिए लोग धर्ममार्गमें प्रवृत्त होते हैं कि हमको संसारके सङ्कटोंसे सदाके लिए मुक्ति प्राप्त हो और इस मुक्तिके लिए धर्मपालन कर रहे हैं तो धर्मपालनमें जो कुछ भी क्रिया हो रही है अतरङ्गमें वह मोक्षके लिए हो रही है । तो क्रियाका फल क्या मिलता है कि मुक्ति प्राप्त होती है, किंतु अब यदि विचार ही नहीं माना जाता, वस्तुमें परिणमन नहीं माना जाता, हम आप सब जीवोंमें अज्ञान परिणति हटे, ज्ञान परिणति आये, ऐसी कोई परिणति ही नहीं मानी जाती तो इसका अपवर्ग कैसे होगा ? और, कर्ता और कारक आदिक भी सब कुछ नहीं बन सकते, क्योंकि वहाँ परिणमन ही कुछ नहीं माना जा रहा । तो परिणमन तो वस्तुके सत्में बँधा हुआ है. प्रत्येक पदार्थ स्वभावत: उत्पन्न होता है, विलीन होता है और बना रहता है । उत्पाद व्यय ध्रौव्य ये तीनों ही प्रत्येक पदार्थमें प्रति समय होते हैं, तो मानना होगा कि प्रत्येक सत् परिणमनशील है । यह वस्तुका स्वरूप है और सच्चा स्वरूप ज्ञानमें आ जाये तो आत्माका स्वरूप भी ज्ञानमें आये । तो वहाँ यह समझमें आयगा कि प्रत्येक पदार्थ जब अपने स्वभावसे उत्पन्न होता है, विलीन होता है और बना रहता है तो फिर किसी पदार्थका दूसरा पदार्थ क्या लगा ? प्रत्येक पदार्थ स्वतंत्र है । किसी पदार्थका कोई अन्य स्वामी नहीं है मैं आत्मा हूं, सत् हूं इसी कारण स्वतंत्र हूं और स्वतंत्रतया परिणमता रहता हूं । मैं अपनेमें अपनी अवस्था बनाता हूं और पहिली अवस्था विलीन करता हूं और सदा बना रहता हूं इसके आगे मेरा कहीं बाहर लेनदेन नही है तो जब मेरा सब कुछ भविष्य मुझपर ही निर्भर है और मैं अपने परिणमन से परिणमता ही रहूंगा । जब ऐसी मेरी बात

मेरेमें ही पायी जाती है तब मेरा बाहरमें कुछ भी क्या रहा ? अज्ञानी जन मोह करके दुखी होते हैं। जब ज्ञानका उदय होता है तो मोह मिटा कि समस्त दुःख तुरंत ही दूर हो जाते हैं। दुःख तो हम अपने अज्ञानके बलपर लाद लिया है। जहाँ अज्ञान दूर हुआ कि संकट भी सब दूर हो जाया करते हैं। अज्ञान दूर होनेका उपाय है वस्तु के स्वरूपका ज्ञान । वस्तु स्वयं सत् है और स्वयं परिणमशील है। अपने ही प्रदेशमें रहने वाला है, अपनेमें अलग-अलग अद्वैतरूप है। इस प्रकार वस्तु स्वरूपका बोध होनेसे मोह दूर होता है। मोह दूर होनेसे अपवर्गकी प्राप्ति होती है। तो यह धर्म-पालक भी इसी आधारपर है। यदि विक्रिया नहीं मानी जाती, पदार्थका परिणमन स्वीकार नहीं किया जाता तो पदार्थकी सत्ता ही नहीं रहती और न कोई शान्तिका मार्ग ही बनाया जा सकता है।

ननु का नो हानिः स्याद्भवतु तथा कारकाद्यभावश्च ।
अर्थात् सन्नित्यं किल न ह्यौषधमातुरे तमनुवर्ति ॥ ४२७ ॥

अनेक प्रसङ्ग आनेपर भी परिणामका अभाव माननेमें कुछ हानि न समझनेकी आरेका—अब यहाँ शङ्काकार कहता है कि पदार्थमें विक्रिया न माननेसे यदि कारक कर्ता आदिकका अभाव होता है तो हो, इसमें कोई हानि नहीं है. वस्तु तो शाश्वत नित्य ही है। माना कि औषधि रोगीके लिये होती है परन्तु रोगीकी इच्छापर औषधि नहीं चलती। इसी प्रकार विक्रियाके न माननेपर यदि कारक आदि का अभाव होता है तो हो, उन कारकादिकको बनानेके लिए हम वस्तुमें परिणाम मानें, विकार मानें इसकी आवश्यकता नहीं है। वस्तु तो केवल परिणामी और शाश्वत नित्य ही होती है। यहाँ अद्वैतवादमें अपरिणामी एक ब्रह्म तत्त्वको सिद्ध करनेके लिए माना गया है, और जो प्राणी ऐसे अपरिणामी शाश्वत् नित्य सह स्वरूपपर दृष्टि करते हैं वे संसार सङ्कटोंसे मुक्त होकर ब्रह्ममें लीन हो जाते हैं। तो वहाँ यदि कर्ता कारक नहीं बनता तो मत बनो, किंतु वस्तु तो शाश्वत नित्य ही मानी जानी चाहिए। वहाँ परिणाम कुछ भी नहीं है। यह विकार परिणाम अवस्था ये सब तत्त्वसे बाहरकी बातें हैं, और इनमें जो फंसता है बस उसीका नाम मोही है। तो विक्रिया नहीं है चाहे कारक आदिक बने अथवा न बने, वस्तु शाश्वत अपरिणामी ही है, इस प्रकार अद्वैतवादीने एक अपरिणामी ब्रह्म तत्त्वको सिद्ध करनेके लिए अपना मंतव्य रखा है।

सत्यं सर्वमनीषित मेतत्तदभाववादिनस्तावत् ।
यत्सत्तत् क्षणिकादिति यावन्नोदेति जलदद्दृष्टान्तः ॥४२८॥

सर्वथा नित्यत्वके मन्तव्यका निराकरण - अब उक्त शँकाके समाधानमें कहते हैं कि शँकाकार ने शाश्वत नित्य मानकर कारक कर्ता विकार आदिका अभाव सिद्ध करना चाहा है लेकिन उसकी मनचाही यह बात तब ही तक बन सकती है जब तक कि पदार्थको क्षणिक सिद्ध करनेका अनुमान और उसकी पुष्टिमें मेघका दृष्टान्त सामने नहीं आता। जो सत् है वह क्षणिक है जैसे कि मेघ आया मेघ देखते देखते ही विलीन हो जाता है, आखिर कोई सत् तो है ही जो दिख रहा है वह असत् तो नहीं है फिर भी उसका व्यय विनाश देखा जा रहा है और उन मेघोंका परिणमन प्रतिसमय कैसा-कैसा विलक्षण चलता है यह भी दृष्टिमें आरहा है, तो मेघका ऐसा व्यक्त परिणमन देखकर भी यह शँका रखना कि जो सत् है वह सर्वथा नित्य ही है, यह मंतव्य कैसे सिद्ध हो सकता है तात्पर्य यह है कि सत् है तो शाश्वत जो सत् है उसका कभी अभाव नहीं होता, लेकिन प्रत्येक सत् परिणामसे परिणमनशील है। प्रत्येक सत्का यह स्वभाव ही है कि वह निरन्तर परिणमन करता ही रहे। अब वहाँ सम्भावनायें बनाना कि परिणमन नहीं होता, परिणमन माया है, परिणमन किसी परके सयोगसे है ये सब कल्पनायें मात्र हैं। भले ही किसी अन्य पदार्थके सम्बंधमें विकार आये लेकिन विकार रूप होता तो नहीं कोई परिणमनको मना नहीं किया जा सकता। प्रत्येक वस्तु है और वह परिणमनशील है। विक्रिया न माननेपर सत्का अभाव हो जाता है, यह बात जो सिद्धान्तमें रखी गई है वह पूर्णतया युक्तिसंगत है।

अयमप्यात्मरिपुः स्यात् सदनित्यं सर्वथेति किल पक्षः।
प्रागेव सतो नाशादपि प्रमाणं क्व तत्फलं यस्मात् ॥४२६॥

सर्वथा अनित्यत्वके मन्तव्यमें भी प्रमाणकी, फलकी व स्वपक्ष साधनकी अनुपपत्ति—जिस प्रकार वस्तुको सर्वथा नित्य कहकर शँकाकार ने अपने ही पक्षका विघात किया इसी प्रकार जो सत् को सर्वथा अनित्य कहते हैं वे भी स्वयं अपने पक्षके शत्रु हैं, क्योंकि सर्वथा अनित्य माननेमें यह बात आई कि सत्का पहिले ही नाश हो गया। उत्पन्न होते ही सत् नष्ट हो जाता है। तो जब सत्का नाश ही हो गया तब प्रमाण और उसका फल कैसे बन सकता है ? प्रमाण माने बिना सिद्धान्तकी व्यवस्था नहीं बन सकती। मानो किसीका यह ही सिद्धान्त हो कि सत् सर्वथा क्षणिक है, पर इसकी सिद्धि तो करनी पड़ेगी। तो सिद्धि करने वाला भी कुछ समय टिकता है कि नहीं और जिसको समझाया जा रहा है वह भी कुछ समय टिकता है कि नहीं ? और इतने पदार्थ समागममें आ रहे हैं ये पदार्थ भी टिकते हैं या नहीं? यदि सभी कोई क्षणवर्ती मान लिया जाय तो समझाने वाला भी कौन समझाया जाने योग्य भी कौन और क्या समझाना ? यह व्यवहार भी न बनेगा और प्रमाण भी न बनेगा। तो जब न प्रमाण है, न ज्ञान है तब फिर उसका फल कैसे बन सकता है ? वहाँ मुक्ति शान्ति

तत्वज्ञान प्रसन्नता आदि फल भी कुछ न हो सकेंगे। तो सर्वथा नित्यकी तरह सत् को सर्वथा अनित्य माननेमें भी स्वयं शंकाकारके पक्षका घात हो जाता है।

अपि यत्सत्तदिति वचो भवति न निगृहकृतेस्वतस्तस्य।
यस्मात् सदिति कुतः स्यात् सिद्धं तत्क्षून्यवादिनामिह हि ॥४३०॥

सत् को अनित्य माननेका एकान्त करनेपर सत्की वचनागोचरताका प्रसङ्ग जिस प्रकार सत्को सर्वथा नित्य माननेमें दोष आता था उसी प्रकार सत्को सर्वथा अनित्य माननेमें भी आपत्ति है। जो पुरुष ऐसा विकल्प करता है कि सत् सर्वथा अनित्य है तो वह स्वयं अपना शत्रु है। जब सत् को सर्वथा नित्य कहा तो इसका अर्थ है कि सतका पहिले ही नाश होगया अथवा उत्पन्न होना नष्ट होगया तब प्रमाण और उसका फल कैसे बन सकता है? किसी भी ज्ञानमें प्रमाणता स्वीकार करनेमें द्वितीय क्षणकी अपेक्षा तो होती ही है और उसका फल छोड़ने योग्यको छोड़ देना और ग्रहण करने योग्यको ग्रहण करना यह सब तो उस ज्ञानके बाद ही बन सकेगा। अतएव जो पुरुष सत् को सर्वथा अनित्य मानते हैं वे स्वयं अपनी मान्यता को कायम नहीं रख सकते।

अपि च सदमन्यमानः कथमिव तदभावसाधनायालम्।
बन्ध्यासुतं हिनस्मीत्यध्यवसायादिवद् व्यलीकत्वात् ॥४३१॥

सत्का अभाव स्वीकार करनेपर सत्में नित्यत्वका अभाव सिद्ध करने की असंगतता--दूसरी बात यह है कि जो सत् है वह इतना कहदेने मात्रसे स्वयं उसका अभाव कर देते हैं क्योंकि जो सत् है उसे ऐसा कहनेमें एकता आती है और नित्यता आती है। तो इस वचनसे ही स्वयं अनित्यपनेका निराकरण हो जाता है। यदि सत् सर्वथा नहीं है ऐसा माना जाय अर्थात् सत् है वह वही है ऐसा न माननेमें सत्का अभाव ही बनता है तब सत्की सिद्धि वहाँ कैसे की जा सकती है? यों सत्को अनित्य माननेमें द्वितीय आपत्ति यह है कि सत्का अभाव मानने वालोंने अथवा विनाश मानने वालोंने सत्की सिद्धि करनेमें क्षमता नहीं प्राप्त किया है, अतः पहिली आपत्ति तो यह थी कि प्रमाण और फल न बनेगा। दूसरी आपत्ति यह है कि सत्का जब विनाश हो गया तो उस सत्की सिद्धि नहीं की जा सकती। सत् तो क्षणमें हुआ था। समझाने वालों का प्रयास द्वितीय क्षणमें है, जिसे समझा रहे वह सत् ही न रहा तो सत्का समझाना क्या है? इस कारण सत्को सर्वथा अनित्य माननेमें समझने समझानेका व्यवहार समाप्त हो जाता है।

अपि यत्सत्तन्नित्यं तत्साधनमिह यथा तदेवेदम् ।
तदभिज्ञानसमक्षात् क्षणिकैकान्तस्य बाधकं च स्यात् ॥४३२॥

प्रत्यभिज्ञान प्रमाणसे क्षणिकैकान्तका विघात—सत्को सर्वथा अनित्य माननेमें तीसरी आपत्ति यह आती है कि जो सत्को नहीं मान रहा है वह सत्का अभाव सिद्ध करनेके लिए कैसे समर्थ है ? जैसे कोई कहे कि मैं बंध्यापुत्रको मारता हूं, तो उसका यह कहना झूठ है । जब बंध्यापुत्र है ही नहीं, तो उसके मारनेका आश्रय कौन होगा ? इसी प्रकार जब सत् ही नहीं है तो सतका आश्रय भी सिद्ध कैसे किया जा सकता है ? जैसे सत्का विनाश माननेपर सत्की सिद्धि नहीं बन सकती उसी प्रकार सत्का विनाश माननेपर सत्के अभावकी भी सिद्धि नहीं बन सकती । तब सत् को सर्वथा क्षणिक मानने वाले जो कुछ सत्के बारेमें कहेंगे वह बंध्यासुतके मारनेके वचनकी तरह समझिये ! वह असत्य ही है । उसमें स्ववचनबाधित दोष आता है । चौथी बात यह है कि सभी लौकिक ज नोंको भी सतके बारेमें प्रत्यभिज्ञान होता है । जो सत है वह नित्य है । इसकी सिद्धि एकत्व प्रत्यक्षभिज्ञानसे जिसका विषय है वही यह है । इस प्रत्यभिज्ञान प्रमाणसे उसकी सिद्धि हो ी है जो कि क्षणिक एकान्तमें बाधक है जिससे क्षणिक एकान्तकी सिद्धि होती है । सभी पुरुष किसी भी पदार्थको निरखकर जिससे कि उनका व्यवहार बनता है उसमें वही वह है, इस प्रकारका प्रत्यभिज्ञान उत्पन्न करता है । लेन-देनमें, घर-गृहस्थीमें या शासन पार्टी आदिकमें सर्वत्र एकत्व प्रत्यभिज्ञान पाया जाता है । एकत्वके ज्ञान बिना किसी भी प्रकारकी व्यवहार व्यवस्था बनना असम्भव है । अत: अपने-अपने अनुभवसे भी यह बात प्रसिद्ध है कि सब सत सर्वथा क्षणिक नहीं हैं ।

क्षणिकैकान्तवदित्यपि नित्यैकान्ते न तत्त्वसिद्धिः स्यात् ।
तस्मान्न्यायादागतमिति नित्यानित्यात्मकं स्वतस्तत्त्वम् ॥४३३॥

सर्वथा नित्य एकान्तमें भी पदार्थकी सिद्धिका अभाव—जिस प्रकार क्षणिक एकान्तके माननेपर पदार्थकी सिद्धि नहीं होती है उसी प्रकार नित्य एकान्तके माननेपर भी पदार्थकी सिद्धि नहीं होती । वस्तुको सर्वथा नित्य माननेपर जब उसमें परिणमन ही नहीं होता तब क्रिया कारक फल ये सिद्ध नहीं हो सकते । इसी प्रकार वस्तुको सर्वथा क्षणिक माननेपर भी उसमें प्रमाणफल कारक ये सिद्ध नहीं होसकते । अतएव न्यायसिद्ध यह बात है कि पदार्थ स्वभावसे ही नित्यानित्यात्मक है । पदार्थके नित्यानित्यात्मक पदार्थके सत्त्वके ही कारण हैं । यदि कोई सत है तो नियमसे वह नित्यानित्यात्मक है क्योंकि जब वह है तो उसका मूलत: नाश कभी नहीं हो सकता । नाश कैसे हो ? नाश होकर सर्वथा उपहार कैसे हो सकेगा ? उसका सत्त्व जो कुछ

उसका सर्वस्व है वह चाहे किसी भी रूपमें बदल जाय मगर सर्वथा उसका लोप नहीं हो सकता। अतएव सत नित्य है। नित्य होकर यदि वह सर्वथा अपरिणामी बन जाय, उसका किसी भी रूपमें व्यक्त रूप न आये तो उसका भी सत्त्व क्या है? जैसे नित्य एकान्तवादियोंने एक अपरिणामी अविकारी ब्रह्म माना है तो वह केवल शब्द की बात रह गई। वहाँ न तो ब्रह्मकी चर्चा करने वालेको लाभ है और न किसीके अनुभवमें बात उतर सकती है। हाँ यदि परम शुद्ध निश्चयनयको विषयभूत तत्त्वको ब्रह्म शब्दसे कहा जाय तो वहाँ समझने वाले की दृष्टि जम सकती है। लेकिन परम शुद्ध निश्चय नयका विषयभूत ब्रह्मतत्त्व केवल ऐसा ही हो सर्वथा तो बात नहीं है। एक पदार्थ है उस पदार्थमें परम शुद्ध निश्चयनयकी दृष्टिसे निरखनेपर एक त्रैकालिक अविकार स्वरूप दीखा। तो यों अगर नय विभागपूर्वक बात कही जाय तो अपरिणामित्व सिद्ध होता है। पर सर्वथा पदार्थ अपरिणामी हो यह बात सिद्ध नहीं होती, यदि वस्तुमें परिणमन नहीं है, उसकी कोई व्यक्त मुद्रा नहीं है तो वस्तु ही सत नहीं हो सकती।

ननु चैकं सदिति स्यात् किमनेकं स्यादथोभयं चैतत्।
अनुभयमिति किं तत्त्वं शेषं पूर्ववदथान्यथा किमिति ॥४३४॥

सत्के एकत्व अनेकत्वसे सम्बन्धित शङ्काकारके प्रश्न—अब यहाँ नित्य अनित्य पक्षकी शङ्का समाधानके बाद शङ्काकार कहता है कि सत क्या एक है अथवा अनेक? उभयरूप है या अनुभयरूप है? या अन्य प्रकारसे है? शङ्काकार कुछ दृष्टियोंसे कुछ पहिचान रहा है तब तो ऐसी शङ्का कर रहा है, परन्तु वह अपनी दृष्टियोंमें अविरुद्ध रूपसे नहीं रह पा रहा, इस कारण शङ्का कर रहा, न तो दृष्टियों की सही पहिचान करने वाले शङ्का कर सकते हैं और न दृष्टियोंसे अनभिज्ञ पुरुष इस प्रकारकी शङ्का कर सकते हैं। अनभिज्ञ पुरुष किस आधारपर यह प्रश्न करेंगे कि सत एक है अथवा अनेक? प्रश्न करते हुएमें कुछ तो उसने भापा, कुछ तो समझा। उस आधारपर यह प्रश्न किया जा रहा। समझने वाला, सुनने वाला शङ्काकारके ही प्रश्नका उत्तर समझते हुए समाधान कर सकता है। पर जिसको दृष्टियोंका कुछ सहारा मिला, परन्तु अविरुद्ध रूपसे समझनेकी बात नहीं जगी उसके चित्तमें ऐसी शङ्का होना प्राकृतिक है। शङ्काकार यहाँ सतके विषयमें पूछ रहा है कि वह एक है अथवा अनेक है? अनेक पुरुष सतको अनेक भिन्न-भिन्न मानते हैं। और प्रत्यक्षसे ऐसे ही नजर आते हैं। जो कुछ दार्शनिक समग्र सतको एक ही सत समझते हैं। यों अनेक पक्षोंको सुनते हुए यह शङ्काकार पूछ रहा है कि सत एक है अथवा अनेक है? लेकिन इस शङ्कासे सम्बन्धित जितने विकल्प हो सकते हैं उन विकल्पोंको भी प्रश्नमें रख रहा है कि क्या उभयरूप है अथवा अनुभयरूप? या पहिलेके विकल्पोंकी तरह किसी अन्य प्रकारसे भी है? यों जिन चतुष्टयोंसे गुम्फित वस्तुको बताया गया था

उनमेंसे प्रथम पक्षका तो वर्णन हो चुका था, अब यह द्वितीय प्रसङ्ग चल रहा है कि सत एक है अथवा अनेक ?

सत्यं सदेकमिति वा सदनेकं चोभयं च नययोगात् ।
न च सर्वथा तदेकं सदनेकं वा सदप्रमाणत्वात् ॥ ४३५ ॥

नययोगसे सत्के कथंचित् एकत्व आदिकी सिद्धिका समाधान—शङ्काकारका कहना यद्यपि कुछ सत्य है लेकिन युक्तिसे अपेक्षासे सत एक भी है अनेक भी है और उभयरूप भी है, किंतु अपेक्षाको छोड़कर सतके बारेमें सर्वथा कुछ भी कहना अप्रमाण है। जैसे कोई कहे कि सर्वथा एक है तो ऐसा मानना अप्रमाण है अथवा अनेक ही बताया, सर्वथा अनेक बताया। यहाँ तक अनेकपर पहुंच जाय कि बुद्धिमें कोई स्वरूप यदि भिन्न-भिन्न जच रहा है तो उसे भी अनेक कह डालो ! जैसे एक ही पदार्थमें गुण कर्म सामान्य विशेष ये भिन्न भिन्न स्वरूपमें जचते हैं तो इन्हें भी भिन्न भिन्न सत कह डाला कुछ दार्शनिकोंने। इस प्रकार सतको सर्वथा अनेक कहना यह भी अप्रमाण है।

अथ तद्यथा सदेकं स्यादभिन्नप्रदेशवत्त्वाद्वा ।
गुणपर्यायांशैरपि निरंशदेशादखण्डसामान्यात् ॥ ४३६ ॥

नयकी विवक्षासे सत्के एकत्वका प्रतिपादन—जैसे द्रव्यार्थिकनयकी अपेक्षासे सत् एक है, इस गाथामें सत्का एकत्व सिद्ध किया जा रहा है। जब द्रव्य दृष्टिसे पदार्थको निहारते हैं तो प्रत्येक पदार्थ अभिन्न प्रदेशी है, उसमें गुण पर्याय कोई पृथक प्रदेशमें नहीं पाये जाते, अतएव वे निरंश हैं। किसी भी पदार्थमें गुण भेद नहीं पडे हुए हैं, जैसे कि समझानेके लिए गुण भेद अवस्थित रूपसे बताये जाते हैं कि ज्ञान, दर्शन, चारित्र, शक्ति आदिक आत्माके गुण हैं अथवा रूप, रस, गंध, स्पर्श ये पुद्गलके गुण हैं। प्रतीत जरूर होता है और सत्य भी विदित होता है कि जब पुद्गल पदार्थका घ्राणेन्द्रिय द्वारा ज्ञान किया जाता तो गंधरूपसे जिन जिन चक्षु इन्द्रिय द्वारा रूप देखा जाता भले ही प्रतिभास भेद भी है, लेकिन वस्तु मूलमें स्वयं किस रूप है ? वह जिस रूप है उस ही रूप है, वह अखण्ड एक है, उनमें गुण भेद किन्हीं अपेक्षाओंसे किया जाता है। तो जहाँ गुणका भेद नहीं, पर्यायरूप अंशका भी भेद नहीं अतएव वह सत् एक है। यहाँ यदि विश्वके समस्त पदार्थोंको सत् स्वरूपसे देखा जाय तो सत् एक है यह कहा जा सकता है, पर यह जाति अपेक्षा कथन है। पदार्थको निरखकर कथन नहीं होता। जो वास्तवमें सद्भूत है, अर्थ क्रियावान है, असाधारण स्वरूप है, ऐसे सत्की बात इस गाथामें कही गई है। जाति अपेक्षा एकत्वकी कल्पना करना ही

तो कल्पना है । जैसे मनुष्य सब एक हैं यह कथन कल्पनासे और जाति अपेक्षासे तो कहा जा सकता है, पर सत्का काम है अर्थक्रिया होना, अपने स्वरूपसे सत् होना पर रूपसे असत् होना, यह सब बात जातिमें नहीं हुआ करती । जब किसी भी एक पदार्थ को निरखकर उसमें सत् एक है यह बात बताते हैं चूंकि गुण पर्यायका भेद नहीं है, निरंश है, अखण्ड है, इस कारणसे सत् एक है ।

द्रव्येण क्षेत्रेण च कालेनापीह चाथ भावेन ।
सदखण्डं नियमादिति यथाधुना वक्ष्यते हि तल्लक्ष्म ॥४३७॥

द्रव्य क्षेत्र काल भावसे सत्के एकत्वके प्रतिपादनकी घोषणा—वस्तुके स्वरूपका निर्णय द्रव्य, क्षेत्र, काल भावकी अपेक्षा से किया जाता है । वस्तुमें किसी भी धर्मका निर्णय करना हो तो वह द्रव्य, क्षेत्र, काल, भावकी अपेक्षासे किया जायगा यहाँ शंकाकारकी जिज्ञासाके अनुसार प्रथम यह बताते हैं कि सत् एक है या अनेक ? अनेकान्तवादमें ये दोनों ही उत्तर सही हैं. किसी अपेक्षासे सत् एक है और किसी अपेक्षा सत अनेक हैं । इसमें परमार्थ सत् एक है । यह सभी पदार्थोंका मिलकर सत् नहीं बताया जा रहा किन्तु विशिष्ट विशिष्ट सत् प्रत्येक सत् अपने आपमें एक अखण्ड हैं । यों सत एक है यह बताया जायगा । फिर व्यवहार दृष्टिसे सत अनेक हैं । चूंकि उस एक सतको उस ही रूपमें समझानेकी कोई पद्धति नहीं है । वह तो ज्ञानमें आगया उसे किसी न किसी प्रकार भेद करके कहा जायगा । जब उसमें गुण पर्याय आदिकका भेद करके समझानेमें व्यवहार पद्धति आती है और वहाँ तब सत गुण रूप है, पर्याय रूप है, यों नानारूप विदित होनेकी सतमें अनेकता विदित होती है । क्षेत्र अपेक्षासे सत एक है अथवा अनेक है यह बताया जायगा, जो कि संक्षेपत: अखण्ड स्वक्षेत्रकी अपेक्षासे एक है, किन्तु उसमें प्रदेश अनेक होनेपर वे प्रदेशकी अपेक्षासे अनेक हैं, काल की अपेक्षा भी एक अनेकका वर्णन होगा, जिसमें इस पद्धतिसे बताया जायगा कि सामान्यकालकी अपेक्षासे याने परिणमन मात्रकी दृष्टिसे वह काल एक है, सभी परिणाम मात्र है, और विशिष्ट कालकी अपेक्षासे काल अनेक हैं अर्थात प्रतिसमयके परिणमन भिन्न-भिन्न हैं । यों ही भावकी अपेक्षासे भी एक और अनेक बताये जायेंगे । एक सामान्य स्वभावकी दृष्टिसे सत एक है उस अखण्ड भावको समझानेके लिए जो भेद किया जाता है, गुणा जाता है वह गुण कहलाता है और उन गुणोंकी दृष्टिसे सत अनेक हैं इस तरह द्रव्य, क्षेत्र, काल, भावकी अपेक्षासे सतकी एक अनेकताका वर्णन किया जायगा । जिसमेंसे यहाँ सत एक है इस बातका पहिले वर्णन करते हैं ।

गुणपर्ययवद्द्रव्यं तद्गुणपर्ययवपुः सदेकं स्यात् ।
न हि किञ्चिद्गुणरूपं पर्ययरूपं च किञ्चिदंशांशैः ॥४३८॥

द्रव्यदृष्टिसे सत्के एकत्वका विचार - द्रव्य गुणपर्यायवान है ऐसा द्रव्यका लक्षण बताया गया है, तो गुण पर्यायवान द्रव्य कोई भिन्न गुण पर्यायसे युक्त नही है. किन्तु गुण पर्याय ही द्रव्यका कलेवर है शरीर है अर्थात वह द्रव्य है, वही गुण और पर्यायरूपमें विदित होता है। तो गुण और पर्याय ही जिसका एक शरीर है ऐसा यह द्रव्य एक है। यह द्रव्य दृष्टिसे द्रव्यकी एकताका कथन किया जा रहा है। द्रव्य दृष्टि में वह द्रव्य एक अखण्ड है, वहाँ यह भेद नहीं है कि कुछ अंश गुणरूप हो और कुछ अंश पर्यायरूप हो। किन्तु वह समूचा ही द्रव्य गुणरूप है, पर्यायरूप है। वहाँ गुण और पर्याय प्रथक प्रथक नहीं हैं, अतएव गुणपर्यायमय जिसका शरीर है उसको द्रव्य कहते हैं। और, वह अखण्ड एक है, इस कारण द्रव्य दृष्टिसे द्रव्य एकरूप है इसी बात को समझानेके लिए दृष्टान्त देते हैं।

रूपादितन्तुमानिह यथा पटः स्यात्स्वयं हि तदद्वैतम् ।
न हि किञ्चिद्रूपमयं तन्तुमयं स्यात्तदंशगर्भांशैः ॥४३९॥

सत्के एकत्वकी सिद्धिमें दृष्टान्त—जैसे कपड़ा रूपादिक वाला है, तंतु वाला है ऐसा जो कहा जाता है इसमें यह बात नहीं है कि कपड़ा अलग है, रूप अलग है, और तंतु अलग है, किन्तु वह स्वयं ही रूपादिमान और तंतुमय है। दोनों ही रूप स्वयं है। अथवा यह कहो कि रूपादि और तंतु अर्थात उसके प्रदेश और गुण परिणमन, वही जिसका शरीर है ऐसा वह तंतु है। तो जैसे द्रव्यदृष्टिसे अर्थात सामान्य दृष्टिसे वह कपड़ा एक अखण्ड वस्तु है उसमें यह विभाग न होगा कि कुछ अंश तो रूपमय हैं और कुछ अंश तंतुमय हैं अथवा उन्हींमें कुछ अंशोंकी दृष्टिसे यह न बनेगा कि किन्हीं अंशोंकी अपेक्षा रूपमय है और किन्हीं अंशोंकी अपेक्षा तंतुमय है, क्योंकि साराका सारा रूपवान और तंतुवान है। जैसे पटको द्रव्य दृष्टिसे अखण्ड बताया गया है इसी प्रकार द्रव्य भी द्रव्य दृष्टिसे अखण्ड है, वहाँ विभाग नहीं हैं। जो कुछ भी है वह सब एक अखण्ड है।

न पुनर्गोरसवदिदं नाना सत्त्वैकसत्त्वसामान्यम् ।
सम्मिलितावस्थायामपि घृतरूपं च जलमयं किञ्चित् ।४४०।

गोरसवत् सत्के एकत्वकी सिद्धिका अप्रसङ्ग—गोरसकी तरह नाना सत्त्वका समूहरूप एक सत्त्व सामान्यरूप नहीं है। द्रव्य जैसे कि गोरसमें वहाँ नाना तत्त्वोंका समूह है, वहाँ घृत भी है जल भी है। तो जैसे गोरसकी सम्मिलित अवस्थामें भी कुछ अंश घृतरूप होता कुछ अंश जलमय होता, वहाँ यद्यपि घृत अलग नहीं पड़ा हुआ है दूध या दही अवस्थामें, फिर भी जो जल अंश वाले अणु हैं उनमें कभी घी न

प्रकट होगा, घी अंश अपने अंशोंमें है। जैसे स्वर्णपाषाण जो कि जमीनमें शुरूसे ही है वह पूरा स्वर्णमय नहीं है। मानो १० मन स्वर्णपाषाण हुआ तो उसमें अनेक विधियोंसे निकाला जानेपर कोई तोला दो तोला शुद्ध स्वर्ण निकलता है। तो वह तोला दो तोला शुद्ध स्वर्ण जितना है उतनेमें ही पाया जाता, कहीं पूरी मिट्टीमें वह नहीं पाया जाता। वहाँ स्वर्ण अलग है, मिट्टी अलग है। लेकिन इतना सूक्ष्म रूप है कि वह स्वर्ण सारी मिट्टीपर छाया है. उसको विधिपूर्वक निकालनेसे वे दोनों अलग अलग अंशोंमें निकल आते हैं। तो ऐसे ही गोरसमें भी जल, घी ये अपने अपने अंशों में हैं तो यहाँ अनेक अंशोंका दूधका समुदाय गोरस कहलाया, स्वर्णपना कहलाया। इस तरह द्रव्य नहीं है कि द्रव्यमें गुणपना और पर्याय अंश ऐसे अनेक सत्त्व पड़े हुए हों और उन गुण और पर्याय सत्त्वोंका समूहरूप एक सत्त्व सामान्य द्रव्य कहलाता हो ऐसी स्थिति नहीं है. किंतु पट और रूपादिमान और तंतुमानकी तरह द्रव्यकी स्थिति है, वह समूचा द्रव्य गुणमय है, समूचा ही पर्यायमय है। जब द्रव्य दृष्टिसे निरखते हैं तो पर्याय और भेद ये दृष्टिमें नहीं रहते हैं उस स्थितिमें वह समूचा अखण्ड जो है वह ही है। इस तरह द्रव्य दृष्टिसे द्रव्य अखण्ड एक होता है।

अपि यदशक्यविवेचनमिह न स्याद्वा प्रयोजकं यस्मात्।
क्वचिदश्मनि तद्भावान्माभूत कनकोपलद्वयाद्वैतम् ॥४४१॥

अशक्यविवेचनत्वसे भी सत्‌के एकत्वका अप्रसङ्ग– द्रव्यके सम्बंधमें जो अनेकता बतायी जा रही है उसके कारण यह नहीं कहा जा सकता कि चूँकि उसमें गुण और पर्यायका अलग कारण नहीं होता, वे प्रथक नहीं किये जा सकते, उनका विवेक करना, उनको प्रथक प्रथक रखना अशक्य है इस कारण द्रव्य एक है और द्रव्य की एकताका सही हेतु नहीं है, ऐसा तो कनक पाषाण में भी सम्भव है। कनक पाषाणमें जैसे मिट्टीमें स्वर्ण निकलता हो उसमें यह विवेचन नहीं किया जा सकता, विवेक भेदकरण प्रथक प्रथक नहीं किया जा सकता कि लो स्वर्ण तो यह है और मिट्टी यह है, न तो आँखों देखकर बताया जा सकता और न उस समय उन्हें अलग किया जा सकता है। तो अशक्य विवेचनके नाते से द्रव्यको यदि एक माना जाय तब तो स्वर्ण पाषाणमें भी एकता मान ली जानी चाहिए। जो स्वर्ण है वह मिट्टी है, जो मिट्टी है वह स्वर्ण है, तो इस शक्य विवेचनकी वजहसे वहाँ एकता नहीं मानी गई है, किन्तु वह द्रव्य ही स्वयं अपने आपमें एक सत् है। जो एक सत् है वह स्वयं अपने आपमें अखण्ड है। यदि खण्ड हो जाय तो वहाँ भिन्न सत् है ऐसा समझना होगा। जैसे दिखने वाले चौकी आदिक पदार्थोंमें चौकी के खण्ड-खण्ड हो जाते हैं टुकड़े कर दिए जाते हैं तो इससे मालूम होता है कि वह चौकी स्वयं एक सत् नहीं है किन्तु उस चौकीमें अनेक परमाणु हैं और वे सब परमाणु मिलकर चौकी स्कंधमें आये हुए थे, तो वह चौकी स्कंध

अनेक सत्का समूह है । अब अनेक सत्का समूह रूप उस चौकीमेंसे कुछ सत् अलग हो गए, कुछ दूसरी ओर पड़ गए । जो एक सत् हो उसके कभी खण्ड नहीं किए जा सकते । तो द्रव्यमें ऐसी एकता है, कि जिसका कभी खण्डन नहीं हो सकता, अतएव द्रव्यका जो यह लक्षण कहा है—गुण पर्याय ही जिसका काय है उसको द्रव्य कहते है, यह पूर्णतया युक्तिसगत है ।

तस्मादेवकत्वं प्रति प्रयोजकं स्यादखण्डवस्तुत्वम् ।
प्रकृतं यथा सदेकं द्रव्येणाखण्डितं मतं तावत् ॥४४२॥

अखण्डवस्तुत्व हेतुसे सत्के एकत्वकी सिद्धि—इस कारण पदार्थमें जो एकत्व है उसका हेतु यह है कि वह अखण्ड वस्तु है । अखण्ड वस्तु होनेके कारण ही पदार्थ में एकता सिद्ध होती है, अर्थात पदार्थ द्रव्यकी अपेक्षासे अखण्डित हैं । यहाँ दृष्टि में जितने भी पदार्थ आते हैं उन पदार्थोंमें यदि परमार्थ द्रव्य निरखना है समझना है, तो उसे युक्ति द्वारा अणुरूपमें समझा जा सकेगा । इस पदार्थमें जो एक-एक अणु हैं वे प्रत्येक एक-एक पदार्थ हैं और उन एक-एक अनेक पदार्थोंका समूह यह स्कंध है तभी इसके टुकड़े हो सकते हैं । एक सत्के त्रिकालमेंभी कभी खण्ड नहीं होसकते. ये पुद्गल स्कंध अनेक परमाणुओंके समूह हैं, अनेक पिण्ड के सहित हैं अतः विभाजन हो जाता है. एक प्रदेश रूप रसगंध स्पर्शमय हैं लेकिन अणु एक प्रदेशी है और वही एक प्रदेश रूपरस गंध स्पर्शमय है, उनके रूप रसगंधस्पर्शको प्रथक नहीं किया जा सकता । भले ही कुछ दार्शनिकोंने ऐसा माना है कि अणुमें यह एक द्रव्य नहीं है किन्तु रूपक्षण, रसक्षण, गंधक्षण यों अनेक पदार्थोंका समूह है और वह कल्प से माना गया है वस्तुतः जो निरंशभाव है, निरंश क्षेत्र है निरंश द्रव्य है, निरंश काल है वही तत्व कहलाता है, लेकिन विचार करनेपर एक पदार्थमें जितने धर्म विदित होते हैं उन धर्मोंका प्रथक-प्रथक द्रव्य संज्ञाकारूप नहीं दिया जा सकता है तो एकत्व है पदार्थमें इसको सिद्ध करने वाला हेतु है अखण्डवस्तुपना । चूंकि वह अधर्म वस्तु है इस कारण वह एक है । उसका द्रव्य दृष्टिसे द्रव्य अपेक्षासे खण्डन कभी नहीं किया जा सकता ।

ननु यदि सदेव तत्त्वं स्वयं गुणः पर्यय स्वयं सदिति ।
शेषः स्यादन्यतरस्तदितरलोपस्य दुर्निवारत्वात् ॥४४३॥
न च भवति तथावश्यम्भावात्तत्समुदयस्य निर्देशात्
तस्मादनवद्यमिदं छायादर्शवदनेकहेतुः स्यात् ॥४४४॥

सत्को ही तत्त्व, गुण, पर्याय माननेसे अन्यतर ही शेष रह जानेके

प्रसङ्ग को दूर करनेके लिये सत्‌की अनेकहेतुता व अनेकता छायादर्शवत् माननेकी आशंका—शङ्काकार यहाँ शङ्का रख रहा है कि ऊपर यह बताया गया कि सत् ही स्वयं तत्त्व है, वह ही स्वयं गुण है और वह ही स्वयं पर्याय है। तो यदि स्वयं सत् ही द्रव्य कहा जाय और वही स्वयं गुण कहा जाय और वही स्वयं पर्याय कहा जाय तब तो एक बात कोई रहना चाहिए, शेष दो बातोंका लोप हो जाना चाहिए, परन्तु ऐसा है कहाँ, क्योंकि द्रव्य गुण पर्यायके समुदायको यहाँ सत् रूपसे बताया गया है, इस कारण यह ही बात अब मान लेना चाहिए कि सत् गुण द्रव्य पर्यायरूप है और उनका समुदाय ही सत् कहलाता है। तो यों सत् अनेक हो गया। जब सत् अनेक हो गया तो उसका कारण भी अनेक होना चाहिए। सो जैसे छाया प्रतिबिम्ब अनेक हेतुवोंसे होते हैं इसी प्रकार यह सत् भी जो एक बना वह अनेक हेतुओंसे बना मानना होगा। जैसे छाया दर्पणके कारण हुई है और हाथके कारण हुई है। यदि सामने हाथ आदिक पदार्थ न आयें तो छाया नहीं आती। और दर्पण न हो तो छाया कहाँ से होगी? तो जैसे छाया प्रतिबिम्बमें कारण अनेक हैं, दर्पण भी कारण है, हाथ भी कारण है, इसी प्रकार सत् जो एक माना गया है उसमें अनेक कारण हैं। द्रव्य गुण पर्याय ये सभी सत् होनेके कारण ही तो है अतः सत्‌को अनेक ही मानना चहिए और उसमें अनेक हेतु भी मान लेना चाहिए।

सत्यं सदनेकं स्यादपि तद्धेतुश्च यथा प्रतीतत्वात् ।
न च भवति यथेच्छं तच्छायादर्शवदसिद्धदृष्टान्तात् ॥४४५॥

प्रतीतिके अनुसार सत्‌में कथंचित् अनेकत्वका विधान बताते हुए उक्त आशंकाका समाधान उक्त शङ्काके समाधानमें कहते हैं कि शङ्काकारका कहना सत्य भी है क्योंकि सत् कथंचित् अनेक भी है और जब सत् अनेक है। उसको अनेक निरखा जा रहा है तो उसकी अनेकताका परिज्ञान करनेके लिए हेतु भी अनेक होंगे। सो कथंचित् सत् अनेक हैं और उसने यथायोग्य अनेक हेतु भी हैं। परन्तु उसके अनेक होनेमें अनेक हेतु इस तरह बताना जैसे छाया और दर्पणकी तरह नहीं है, किन्तु प्रतीतिके अनुसार है। वस्तु एक है, उस वस्तुमें द्रव्यरूपसे प्रतीति हो वहाँ तब गुण हैं, पर्यायरूपसे प्रतीति हो तब वह पर्याय है। उस सत्‌की अनेकताको छाया और दर्पणके समान नहीं कहा जा सकता। इस विषयमें बात तो उचित कही गई है मगर कथंचित की दृष्टिसे और छायादर्शका जो दृष्टान्त दिया है वह तो बिल्कुल ही असिद्ध है। वह दृष्टान्त क्यों असिद्ध है उसके उत्तरमें कहते हैं।

प्रतिबिम्बः किल छाया वदनादर्शादिसन्निकर्षाद्धै ।
आदर्शस्य सा स्यादिति पक्षे सदसदिव वान्वय भावः ॥४४६॥

यदि वा सा वदनस्य स्यादिति पक्षोऽप्यसमीक्ष्यकारित्वात् ।
व्यतिरेकाभावः किल भवति तदास्यस्य सतोऽप्यच्छायत्वात् ४४७

छायाको आदर्शकी माननेसे अन्वयाभाव होनेसे सत्की अनेकताके लिये दृष्टान्तकी अयुक्तता छाया नाम प्रतिबिम्बका है । दर्पणमें जो छाया आती है वह एक प्रतिबिम्बका ही तो है और वह छाया मुख और दर्पणके सम्बन्धसे आती है । यदि कोई दर्पणमें मुख देख रहा है तो वह छायाका उपादान कारण तो दर्पण है और निमित्त कारण मुख है । तो मुखके निमित्तसे दर्पणका छायारूप परिणमन हुआ है, उस छायामें हेतु यहाँ दोनों हैं, अनेक हैं । उस छायाको यदि केवल दर्पणकी ही कहा जाय तो सत् असत्के समान हो जायगा । अर्थात् जब उसका अन्वय न बनेगा, छायाको दर्पणकी ही कहा जानेपर यह व्याप्ति बनाना चाहिए कि जहाँ-जहाँ दर्पण हो वहाँ-वहाँ छाया होना चाहिये परन्तु यह व्याप्ति सही नहीं है ऐसा देखनेमें आता है । बिना छायाके ही दर्पण रहा करता है । तो छाया और दर्पणका दृष्टान्त देना प्रकृतमें असिद्ध है ऐसा द्रव्य गुण पर्यायमें अन्वयका अभाव तो नहीं है छाया और दर्पणमें अविनाभाव नहीं देखा जाता, किन्तु द्रव्य गुण, पर्याय ये तीनों ही सहभावी हैं और कोई भी क्षण ऐसा नहीं कि तीनोंमें किसी एकका अभाव हो । सभीके सभी सदैव रहते हैं, वस्तु तो वहाँ एक ही है उस वस्तुको जिस दृष्टिसे देखा वहाँ वैसा प्रतीत होता है । तो छाया दर्पणके दृष्टान्तमें अन्वय नहीं बनता, वह दृष्टान्त असिद्ध है ।

छायाको मुखकी माननेपर व्यतिरेकका अभाव होनेसे सत्की अनेकता के लिये छायादर्श दृष्टान्तकी अयुक्तता—और, भी सुनो उस छायाको यदि मुखकी छाया कही जाय तो यह पक्ष भी अयुक्त है, क्योंकि मुखकी छाया मानी जानेसे वहाँ व्यतिरेक नहीं बनता । मुखकी ही छाया मानी जाय तो यह व्याप्ति बनना चाहिये कि जहाँ-जहाँ छाया नहीं है वहाँ वहाँ मुख भी नहीं है किन्तु क्या ऐसा पाया जाता है ? मुख तो दिखनेमें आता है पर छाया नहीं है वहाँ । तो छाया दर्पणके दृष्टान्तमें अन्वय भी नहीं बनता इस कारण यह दृष्टान्त अयुक्त है । प्रकृतमें दो दर्पण गुण पर्यायमें व्यतिरेकका व्यभिचार नहीं हैं । वहाँ व्यभिचार नहीं है, वहाँ द्रव्य नही है, वहाँ गुण पर्याय भी नहीं है और जहाँ गुण पर्याय नहीं है वहाँ द्रव्य भी नहीं है । तो द्रव्य गुण पर्यायमें तो यह बात बन जाती है वहाँ परस्पर अविनाभाव बनता है, लेकिन मुख और छायामें अविनाभाव नहीं बनता । द्रव्य गुण पर्याय ऐसा अविनाभावी है कि जैसे रूप रस गंध स्पर्श, इनकी अभिन्नता है । जहाँ रूप नहीं है वहाँ रस गंध स्पर्श भी नहीं है । जहाँ रस नहीं है वहाँ शेष तीनों नहीं हैं, इसी तरह गंधके अभावमें शेष तीन नहीं, और स्पर्शके अभावमें शेष तीन नहीं रह सकते । तो रूप, रस,

गंध स्पर्शकी तरह द्रव्य गुण पर्यायमें भेद आया, अतएव सत्के विषयमें छाया दर्पण का दृष्टान्त देना संगत नहीं है। भले ही सत् कथंचित अनेक हैं मगर वे प्रतीति की अपेक्षा अनेक है। कोई छाया दर्पणकी तरह भिन्न भिन्न अनेक द्रव्योंके कारण भी सत् में अनेकता नहीं आती। दृष्टान्त जो दिया गया है वह भिन्न–भिन्न द्रव्योंका दिया गया है अतः मानना होगा कि सत् द्रव्य दृष्टिसे एक है, पर्याय दृष्टिसे अनेक हैं।

एतेन निरस्तोऽभून्नानासत्त्वैकसत्त्व वादीति ।

प्रत्येकमनेकं प्रति सद्द्रव्यं सन् गुणो यथेत्यादि ॥४४८॥

अखण्डवस्तुत्व होनेके कारण सत्के सम्बन्धमें नानासत्त्वैक सत्त्ववादिताका निराकरण—अब उक्त कथनसे यह बात निराकृत हो जाती है कि नाना सत्त्वोंका एक सत्त्व मानना। कुछ दार्शनिक ऐसे हैं कि जो नाना सत् मानते हैं परन्तु उन सब नाना सतोंमें एक महासत्ता उन नाना सतोंसे भिन्न कोई एक है और उसका प्रकाश उसका व्यापना प्रत्येक आवान्तर सत्में है। जैसे वैशेषिक सिद्धान्तमें ७ पदार्थ माने गए द्रव्य, गुण, कर्म, सामान्य विशेष समवाय और अभाव। नैयायिकने कुछ और पदार्थ बढ़ाकर १६ पदार्थ माने हैं। तो ७ मानें अथवा १६ मानें, वे सब आवान्तर सत् हैं। उनके ऊपर कोई एक महासत्ता भी आती है। तो नाना सत्त्वोंके ऊपर एक सत्त्व माननेका मंतव्य सही नहीं है कारण यह है कि जब वे सब आवान्तर सत् हैं तो अब महासत्ताकी क्या जरूरत रही? वे अपने-अपने सत्के कारण सत् हैं। और, दूसरी बात यह है कि जैसे वे ७ अथवा १६ प्रकारके पदार्थ माने हैं वह सब एकान्त आग्रह रखने वाली बात है। जैसे कोई भी पदार्थ लो वह एक अखण्ड सत् है। एक जीव ही ले लो, वह एक जीव द्रव्य है। अब उस जीव द्रव्यमें भावका भेद जब किया जाता है तो वह नाना गुणके रूपमें प्रतीत होता है तो वह गुण उस द्रव्यसे निराला नहीं है उनका प्रदेश अलग नहीं है उनका उत्पाद व्यय अलग नहीं है। केवल भेद दृष्टिसे समझनेके लिए गुण बताये गए हैं। तो वे गुण अलग आवान्तर सत् नहीं हैं। कर्म जो एक अलग सत् बताया गया है विशेषवादमें वह कर्म भी क्या चीज है? द्रव्य भावात्मक और क्रियात्मक हुआ करता है। अर्थात् द्रव्यमें कुछ गुण तो भावस्वरूप ही है और कुछ एक क्रियात्मक गुण है। क्रियात्मक गुणका ही नाम कर्म है। उसकी जो क्रिया होती, चलन हलन, चलन फिरन वे सब कर्म कहलाते हैं। तो ये कर्म द्रव्यसे कुछ अलग नहीं कहलाते हैं और सामान्य विशेष भी कोई अलग वस्तु नहीं है। वह द्रव्य ही जाति दृष्टिसे अथवा सतको एक सामान्य भावसे निरखनेकी दृष्टिसे सामान्य रूप हुआ और जब उसमें भेद दृष्टि से निरखते हैं तो विशेषरूप बनता है। तो सामान्य विशेष भी कोई अलग वस्तु नहीं है। जब यह अलग ही नहीं है तो समवाय किसका कराना है? यह सब तादात्म्यरूपसे है और भावस्वरूप हुआ करता है, वह

भी कोई अलग पदार्थ नहीं है । तो यों सत् एक अखण्ड है, पर प्रतीति की दृष्टिसे सत् द्रव्य गुण पर्याय सामान्य विशेष अनेक रूप कहा जा सकता है ।

क्षेत्रं प्रदेश इति वा सदधिष्ठानं च भूर्निवासश्च ।
तदपि स्वयं सदेव स्यादपि यावन्न सत्प्रदेशस्थम् ॥४४६॥

क्षेत्रविचारमें सत् और सत्के क्षेत्रका अभेद—सत्त्वको द्रव्य दृष्टिसे एक अनेक सिद्ध किया गया है अब उस ही सत्को क्षेत्र दृष्टिसे जब विचारते हैं तो वह एक है अथवा अनेक है इस प्रकारकी जिज्ञासाका समाधान कर रहे हैं । क्षेत्र कहो, प्रदेश अथवा उसे सत्का निवास कहो या सत्की पृथ्वी या सतका निवास कहो ये सभी पर्यायवाची शब्द हैं । सबका ही नाम है क्षेत्र, ये सब स्वयं सत स्वरूप हैं । ऐसा नहीं है कि जब यह बोला गया कि सतमें प्रदेश होते हैं तो प्रदेश कोई अलग पदार्थ हो, सत अलग पदार्थ हो ऐसा नहीं है । जहाँ यह कहा जाय कि सतका आधार क्षेत्र है. प्रदेशमें ही तो वह वस्तु रहा करती है, इतना कहे जानेपर भी यह न समझना कि प्रदेश कोई अलग चीज है, सत कोई अलग चीज है और फिर उनका आधार आधेय भाव बना हो, सतका निवास कहा गया तो यह नहीं है कि सतका निवास स्थान अलग चीज है किन्तु सत् और प्रदेश दोनों ही एक वस्तु हैं सत्का क्षेत्र स्वयं सत्स्वरूप ही है । यहाँ क्षेत्र कहनेसे आकाश प्रदेशकी बात न समझना कि जिन आकाश प्रदेशोंमें सत् पदार्थ ठहरा हुआ हो वह सत्का क्षेत्र हो उसे नहीं कहा गया । उस क्षेत्रमें और भी अनेक द्रव्य हैं । तो आकाश प्रदेशको सत्का क्षेत्र न समझना किन्तु समग्र सत् ये ही समस्त द्रव्य अपने जिन प्रदेशोंसे अपना स्वरूप पा रहे हैं वे ही सत्के प्रदेश कहे जाते हैं । अर्थात् प्रवेश समझनेके लिए प्रदेश क्या है, किस प्रकार बताया जाय कि सत् इतने फैलावमें व्याप्त है । जीव एक कितना महान है, कितने फैलावमें है या एक पुद्गल अथवा अन्य द्रव्य अपने कितने फैलावमें है, कितना महान है, यह बात समझानेका ढङ्ग प्रदेशको ही बताया गया है । सत्में प्रदेश कल्पना सब क्षेत्र प्रदेशकी तुलना करके की गई है, परन्तु यह प्रदेश उस सत्से जुदा नहीं है ? वह उस हीके अपने रूप हैं ।

अथ ते त्रिधा प्रदेशाः क्वचिन्निरंशैकदेशमात्रं सत् ।
क्वचिदपि च पुनरसंख्यदेशमयं पुनरनन्तदेशवपुः ॥४५०॥

सत्की निरंशैकदेशमात्रता असंख्यात प्रदेशिता व अनन्त प्रदेशिता—वह प्रदेश तीन प्रकारसे होता है । कोई सत् तो निरंश एक प्रदेश मात्र होता है और किन्हीं द्रव्योंमें असंख्यात प्रदेश होते हैं और कोई द्रव्य अनन्त प्रदेश वाला है । एक

परमाणु और काल द्रव्य ये एक प्रदेशी हैं परमाणु अनन्तानन्त हैं। प्रत्येक परमाणु एक देशी ही हैं। कालद्रव्य असंख्यात है। प्रत्येक काल द्रव्य असंख्यात प्रदेशी है। धर्म द्रव्य तो एक ही है अधर्म द्रव्य भी एक ही है जीव द्रव्य अनन्तानन्त हैं। सो प्रत्येक जीव पदार्थ असंख्यात प्रदेशी है। आकाश द्रव्य अनन्त प्रदेशी है। आकाश द्रव्य भी एक अखण्ड है। प्रदेश भेदकी अपेक्षासे द्रव्योंका तीन प्रकारसे विभाग होता है। कोई है एक प्रदेशी कोई है असंख्यात प्रदेशी और कोई है अनन्त प्रदेशी।

ननु च द्व्यणुकादि यथा स्यादपि संख्यातदेशि सत्त्विति चेत् ।
न यतः शुद्धादेशैरुपचारस्याविवक्षितत्वाद्वा ॥४५१॥

उपचारकी अविवक्षा होनेसे सत्में संख्यात प्रदेशवत्त्वका प्रतिषेध — यहां शङ्काकार कहता है कि द्व्यणुक अर्थात दो परमाणु वाला स्कंध ३-४ लाख करोड आदिक परमाणुओंका पिण्ड यह तो संख्यात प्रदेशी है। असंख्यातसे कम और एकसे ज्यादह उसे बोलते हैं संख्यात। तो जब द्वणुक आदिक स्कंध संख्यात प्रदेशी हैं तो इनका वर्णन क्यों नहीं किया गया? जैसे कि एक प्रदेशी असंख्यात प्रदेशी और अनन्त देशी द्रव्य बताये हैं उसी प्रकार संख्यात प्रदेशी द्रव्य भी बताया जाना चाहिये समाधान इसका यह है कि यहां वर्णन शुद्ध नयकी अपेक्षासे शुद्ध द्रव्यका वर्णन है अर्थात इकहरे एक एक द्रव्यका वर्णन है। दो अणु तीन अणु आदिकका समूहरूप जो स्कंध है वह परमार्थतः एक द्रव्य नहीं है, किन्तु जितने अणुओंका वह पिण्ड है उस पिण्डमें उतने द्रव्य हैं तो उनमें एक एक द्रव्यकी बात, परमाणु एक प्रदेशी है, इस रूप में बताया गया है। द्वणुक तृणुक आदिकका जो सिद्धान्त ग्रन्थोंमें अस्तिकाय कहा गया है और पुद्गल द्रव्यके दो भेद हैं परमाणु और स्कंध इस तरहसे उन्हें पुद्गल द्रव्य कहा गया है सो वह उपचारसे है अर्थात उन दो चार आदिक परमाणुओंमें स्कंध होनेपर ऐसी एक पिण्डता हो जाती है कि उसके विभाग करना अशक्य हो जाता है, इस कारण उन सब स्कंधोंको उपचारसे द्रव्य कहना चाहिए। वास्तवमें द्रव्य तो एक एक परमाणु करके अनन्तानन्त परमाणु हैं, एक एक जीव करके अनन्तानन्त जीव हैं एक धर्म द्रव्य एक अधर्म द्रव्य, असंख्यात काल द्रव्य और एक आकाश द्रव्य, ये शुद्ध अर्थात इकहरे परके संयोगसे रहित द्रव्य कहलाते हैं और उन्हीं द्रव्योंको देखकर यहां प्रदेशका वर्णन किया गया है।

अयमर्थः सद्द्वेधा यथैकदेशीत्यनेकदेशीति ।
एकमनेकं च स्यात्प्रत्येकं तन्नयद्वयान्न्यायात् ॥४५२॥

एक प्रदेशी व अनेक प्रदेशीके भेदसे क्षेत्रापेक्षया सत्की द्विविधता —

यहाँ इसी बातको इस रूपसे निरखिगेगा कि सत दो प्रकारके होते हैं. कोई एक प्रदेश में कोई अनेक प्रदेशमें, जिसमें केवल एक ही प्रदेश है वह एक प्रदेशी कहलाता है और जिसमें एक से ज्यदाह प्रदेश हैं उन्हें अनेक प्रदेशी कहते हैं। जो एक प्रदेशी है वह द्रव्य भी नय सामान्यकी अपेक्षासे एक प्रकार है और नय विशेषकी अपेक्षासे अनेक प्रकार है। जैसे एक प्रदेशी परमाणु है तो परमाणु अपने अखण्ड द्रव्यकी दृष्टिसे वह एक ही प्रकार का है, पर किस किस तरहके परमाणु होते हैं परमाणुओं में कैसी कैसी गुण पर्यायें होती हैं आदिक दृष्टियों से निरखनेपर वही एक प्रदेशी अनेक प्रकारसे जचता है इसी प्रकार अनेक प्रदेशी द्रव्य भी नय सामान्यकी अपेक्षासे एक है और नय विशेषकी अपेक्षा से अनेक प्रकार है। अनेक प्रदेशी द्रव्योंमें दो ही प्रकारके द्रव्य हैं—कोई असंख्यात प्रदेशी और कोई अनन्त प्रदेशी। अनन्त प्रदेशी द्रव्य तो एक ही है आकाश, और असंख्यात प्रदेशी धर्मद्रव्य और एक जीवद्रव्य है सो जब नय सामान्यसे निरखा जाता है तो प्रत्येक द्रव्य एक प्रकारका है और नय विशेषसे देखनेपर अनेक प्रदेश भेदसे निरखनेपर गुण पर्यायके भेदसे निरखनेपर वे अनेक प्रकार विदित होते हैं।

अथ यस्य यदा यावद्यनेकदेशे यथास्थितं सदिति।
तत्तावतस्य यदा तथा समुदितं च सर्वदेशेषु ॥४५३॥

प्रत्येक द्रव्यके सर्वप्रतेशोंमें एक सत्त्व—जिस समय जिस द्रव्यमें एक देशमें जैसे सत् रहता है उस ही प्रकार उस द्रव्यमें उस समय सर्व देशमें सत् बना रहता है। अर्थात जो द्रव्य है वह अखण्ड है, उसके एक प्रदेशमें जो सत् है वही उसके सर्वप्रदेशमें है, अनेक द्रव्य असंख्यात प्रदेशी हैं, आकाश अनन्त प्रदेशी हैं तो इतने अनेक प्रदेश होनेपर कहीं कोई यह ध्यान न करे कि अनेक प्रदेशीमें सत् भिन्न-भिन्न रूपसे रह रहा है। द्रव्य वही एक है वहाँ खण्ड नहीं है, किन्तु एक तिर्यक अंशकी कल्पना करके उसमें प्रदेशका विचार किया गया है जैसे कोई वस्तु मानो दो अंगुल चौड़ी चार अंगुल लम्बी और दो अंगुल मोटी है तो उस वस्तुमें जब हम तिर्तक अशंकी कल्पनासे देखेंगे तो प्रदेशका विभाग बनेगा और इतनी लम्बी, चौड़ी, मोटी समझी जायेगी, उसके प्रदेश उतनेही क्षेत्रमें माने जायेंगे जितना कि उसका माप माना गया है, ऐसे ही प्रत्येक द्रव्य अपने आपमें कितने विस्तारमें रहता है इसको बताना यह प्रदेश कल्पना है एक प्रदेश कहते हैं उतने हिस्से को कि जितने हिस्सेपर एक परमाणु के द्वारा रोका गया क्षेत्र एक प्रदेश कहलाता है। यद्यपि एक प्रदेशमें असंख्यात प्रदेशी वस्तु रह सकता है। लेकिन नियम यहाँसे लगाना है कि वह एक परमाणु एक प्रदेशसे ज्यादह जगहको नहीं रोक सकता। तो उस प्रदेशके माप भी फिर इन सब पदार्थोंका माप किया गया तो कोई पदार्थ असंख्यात प्रदेशी भी निकला और कोई अनन्त प्रदेशी

निकला, पर है सबकी अखण्ड सत्ता। जैसे एक जीव द्रव्य है, अपने आपमें अनुभव करके भी देखें तो भी जीव कितने विस्तारमें फैला हुआ है। तिसपर भी है जीव वही एक जो कि इतने विस्तार वाला है उसमें जुदे-जुदे प्रदेशमें जुदे-जुदे तत्त्व नहीं हैं। यह बात तो स्कंधोंमें बताई जा सकती है क्योंकि स्कंध अखण्ड द्रव्य नहीं है, वह अनेक द्रव्योंका पिण्ड है इसलिए जुदे-जुदे प्रदेशमें जुदा-जुदा सत्त्व है। ये सब अखण्ड द्रव्य होनेसे एक अखण्ड प्रदेशी ही द्रव्य हैं, पर वस्तु वास्तवमें कितनी है, यह बतानेके लिए प्रदेशभेदका प्रतिपादन किया गया है।

इत्यनवद्यमिदं स्याल्लक्षणमुद्देशितस्य तन्न यथा।
क्षेत्रेणाखण्डित्वात् सदेकमित्यत्र नयविभागोऽयम् ॥ ४५४ ॥

क्षेत्रकी अपेक्षा अखण्डितपना होनेसे सत्के एकत्वकी सिद्धि—इस प्रकार निर्दोष विधिसे क्षेत्रकी अपेक्षासे वस्तुका विवरण किया गया। एक सत्के सब ही प्रदेश अखण्ड हैं अर्थात् वहाँ खण्ड कुछ भी नहीं पड़ा। वह उतने ही विस्तारवाला पदार्थ एक है अतएव सभी प्रदेश एक सत कहे जाते हैं। और एकत्व विवक्षामें पदार्थों का इस तरह ही निरखना होता है। प्रत्येक पदार्थ अखण्डक्षेत्री हैं। जैसे यह जीव है उसके अखण्ड क्षेत्र हैं। अन्तर बीचमें नहीं पड़ता कि कुछ हिस्सा बीचमें जीवका खाली हो गया हो उन प्रदेशोंमें और बादमें जीव लग गया हो, वह अखण्डतासे अपने प्रदेशमें रहता है। तो इस तरह अखण्ड पदार्थमें उनका विस्तार बतानेके लिए क्षेत्रकी पद्धतिसे उनका वर्णन किया जाता है।

न पुनश्चैकापवरकसञ्चरितानेकदीपवत्सदिति।
हि यथा दीपसमृद्धौ प्रकाशवृद्धिस्तथा न सद्वृद्धिः ॥ ४५५ ॥

अनेकदीप प्रकाशकी भांति सत्की वृद्धिका अभाव—पदार्थके प्रदेशके सम्बन्धमें इस तरह समझना चाहिए कि जैसे एक मकानके भीतर अनेक दीप रखे हों तो ज्यों ज्यों दीपकी संख्या बढ़े त्यों त्यों वहां प्रकाश बढ़ता है। जैसे एक दीप रखा, उसकी जितनी जगह है उस मकानमें दूसरा दीप रखनेपर प्रकाशमें वृद्धि हो जाती है। जितनी जितनी दीपों की संख्या बढ़ती जायगी उतनी ही उतनी प्रकाशकी वृद्धि भी होती जायगी। यों उन सतमें नहीं है कि किसी पदार्थमें प्रदेश बढ़ गया तो उस पदार्थका सत बढ़ गया या अन्य स्वरूप बढ़ गया, इस प्रकारका विभाग नहीं है। सतकी वृद्धि अनेक दीपोंके प्रकाशके समय नहीं होती।

अपि तत्र दीपशमनेकस्मिंश्चित्तत्प्रकाशहानिः स्यात्।
न तथा स्यादविवक्षितदेशे तद्धानिरेकरूपत्वात् ॥ ४५६ ॥

कतिपय दीपशमनमें प्रकाशशून्यताकी भाँति सत्‌में न्यूनताका अभाव: ऐसा भी नहीं है पदार्थके प्रदेशके सम्बन्धमें कि जैसे एक मकानमें रखे हुए अनेक दीपों मेंसे किसी दीपको बुझा दिया जाय तो उस मकानमें प्रकाशकी कुछ कमी हो जाती है. इस तरहसे वहां किसी पदार्थमें सत्‌की कमी हो जाती हो, ऐसा नहीं है। अथवा यों किसी भी द्रव्यको निरख रहे हैं कि जब किसी हिस्सेपर दृष्टि है तो जहाँ दृष्टि नहीं है याने अविवक्षित देश है वहाँ सत्‌की हानि हो गई हो, ऐसा नहीं होता। जैसे एक द्रव्यके बारेमें कोई उपयोग किसी अङ्गकी ओर लगाये हो, मानो मस्तकके प्रदेशकी ओर उपयोग लगाये हो तो इसके मायने यह न होगा कि अन्य अविवक्षित देशमें सत्‌ की कमी हो जाती हो। तो पदार्थमें जो क्षेत्र विस्तार है वह अखण्ड है और वह समूचा एक ही है। कहीं वहाँ अनेक सत्‌ या सत्‌की कमी वृद्धि नही होती है। अथवा इस प्रकरणको समझनेके लिए दूसरा दृष्टान्त लो ! एक मन साफ रुई कहीं रखी है, धुनने के बाद वह कितने बडे क्षेत्रमें समाई हुई है, यदि उस रुईको किसी यत्रके नीचे रख कर दबा दी जाय, उसकी गांठ बना दी जाय तो वह थोड़ेसे प्रदेशमें रह जाती है। तो जब वह रुई बहुत विस्तारमें फैली हुई थी तो कहीं उसके प्रदेश नहीं बढ गये, और जब रुईकी गांठ बना दी गई तो कहीं प्रदेश कम नहीं हो गये। और वजनकी दृष्टिसे भी देखा जाय तो जो वजन पहिले थी वही अब भी है, वहाँ प्रदेशकी हानि नहीं है, ऐसे ही समझिये कि जीव संकोच विस्तार वाला है। संकोच हो जाने पर भी कहीं शरीर प्रदेशोंमें कमी नहीं हो जाती विस्तार हो जानेपर भी जीवके जितने प्रदेश माने गए हैं, उनकी कहीं वृद्धि नहीं हो जाती ऐसा अखण्ड सत्‌ समझना चाहिये और उसके विस्तारको समझनेके लिए प्रदेश भेदकी कल्पना की है यह बात माननी चाहिये।

नात्र प्रयोजकं स्यान्नियतनिजाभोगदेशमात्रत्वम्‌ ।
तदन्यथात्वसिद्धौ सदनेकं क्षेत्रतः कथं स्याद्धा ॥ ४५७ ॥

नियतनिजाभोगदेशमात्रत्व हेतुकी सत्‌का एकत्व सिद्ध करनेमें अप्रयोजकता – यहां नियतनिजाभोगदेशमें होना यह हेतु सत्‌की एकताको सिद्ध करने में समर्थ नही है, किन्तु सत्‌ एक है, इसको अखण्ड देशित्व ही सिद्ध करनेमें समर्थ है। निजाभोग देशका अर्थ यह है कि पदार्थका अनुभवन जितने प्रदेशमें होता है उतने प्रदेश को कहते हैं निजाभोगदेश। अथवा जितने बाहर आकाश क्षेत्रमें उस पदार्थका विस्तार है उसे कहने लगे निजाभोगदेश। इस हेतुसे पदार्थकी एकता अखण्डता सिद्ध नहीं होती है, क्योंकि इस हेतुसे एकता माननेपर अन्य प्रकारसे भी बात देखी जाती है कि उस ही आकाशके हिस्सेमें अन्य अनेक पदार्थ भी मौजूद हैं, इस कारण उनकी एकता सिद्ध नहीं होती।

सदनेकं देशानामुपसंहारात्प्रसर्पणादिति चेत् ।
न यतो नित्यविभूनां व्योमादीनां न तद्विध तदयोगात् ।४५८।

अपि परमाणोरिह वा कालाणोरेकदेशमात्रत्वात् ।
कथमिव सदनेकं स्यादुपसंहारप्रसर्पणाभावात् ।। ४५९ ।।

सत्के प्रदेशोंका सकोच विस्तार होनेके कारण सत्को अनेक मानने की आशङ्काका निराकरण सत्के प्रदेशका संकोच विस्तार होता है और इस संकोच विस्तार के कारण सत् अनेक हैं ऐसी आशङ्का न करनी चाहिए, क्योंकि सत्के प्रदेशका संकोच विस्तार होनेसे यदि वहाँ सत्को अनेक कह दिया जाय तो आकाश तो नित्य व्यापक है उसमें फिर किसी भी नयसे अनेकत्व न घटा सकेंगे, क्योंकि वहाँ संकोच विस्तारका अभाव है, और परमाणु और कालाणु ये तो सदा एक प्रदेशी ही रहते हैं। इनमें तो संकोच विस्तारका अवकाश ही नहीं है, फिर नय विभागसे कालाणुमें भी अनेकत्व सिद्ध किया जाता है और परमाणुमें भी किया जाता है, वह किस प्रकार सिद्ध होगा ? तो संकोच विस्तार होनेके कारण सत्में अनेकत्व करना ठीक नहीं है।

ननु च सदेकं देशैरिव संख्या खण्डयितुमशक्यत्वात् ।
अपि सदनेकं देशैरिव संख्यानेकतो नयादिति चेत् ।। ६४० ।।

शङ्काकार द्वारा सत्को एक अनेक माननेके प्रकारका वर्णन-शङ्काकार यहाँ शङ्का करता है कि सत्में एकता और सत्की अनेकता इस तरह मानना चाहिए, सत् एक तो इस दृष्टिसे है कि उस एक सत्मे पदार्थकी संख्याका खण्डन नहीं किया जा सकता अर्थात् उसका प्रदेश खण्डित नहीं हो सकता, उतना ही रहेगा इस कारणसे तो एक है और सत् अनेक इस दृष्टिसे है कि चूंकि उसमें अनेक प्रदेश हैं तो प्रदेशकी अनेक संख्या होनेसे वह सत् अनेक कहलायेगा। इस तरह सत्को एक और अनेक मानना चाहिए। चूंकि सत् सदा अखण्ड रहता है उसे खण्डित नहीं किया जा सकता अलग-अलग उसका विभाग नहीं बनाया जा सकता, इस कारण तो वह एक है परन्तु ऐसा अखण्ड रहनेपर भी उसके प्रदेशकी सख्या अनेक है, तो उन अनेक प्रदेशोंकी दृष्टिसे वह सत् अनेक कहा जाना चाहिये।

न यतोऽशक्य विवेचनमेकक्षेत्रावगाहिनां चास्ति ।
एकत्वमनेकत्वं न हि तेषां तथापि तदयोगात् ।। ४६१ ।।

सत्‌के एकत्वके लिये अशक्यविवेचनत्व हेतुकी अप्रयोजकता बताते हुए उक्त शंकाका समाधान—उक्त शङ्काका समाधान करते हैं कि सत्‌के एकत्वको सिद्ध करनेके लिए जो यह हेतु दिया है कि वह अशक्य विवेचन है, अर्थात् उसके प्रदेश को विभक्त नहीं किया जा सकता इस कारण वह सत् एक है। वह हेतु दे करके सत् का एकत्व सिद्ध नहीं किया जा सकता। खण्डित न किया जा सकनेसे यदि एकत्व मान लिया जाय तो देखिये ? जहाँ आकाश है वहाँ ही धर्म, अधर्म और काल द्रव्य हैं और पुद्गल तो किसी भी प्रकार एक जगहसे दूसरी जगह पहुंच जाता है, इस कारण उसे उदाहरणमें न लें किन्तु जो सत्ता ही शाश्वतमें ही जगत स्थित है ऐसा आकाश धर्म, अधर्म, और काल इनमें तो क्षेत्र भेद नहीं है और भेदाभेद करना अशक्य ही है। कभी भी उनका क्षेत्र भेद नहीं किया जा सकता। तो इस पदार्थमें क्षेत्र भेद न किया जानेसे एकत्व बन जाना चाहिए अर्थात् ये चारों द्रव्य एक हो जाने चाहिएं किन्तु है नहीं एक, इस कारण मानना होगा कि सत्‌का एकत्व सिद्ध करनेका यह हेतु समीचीन नहीं है कि उनके क्षेत्रका विभाग नहीं किया जा सकता। वे कभी अलग नहीं हो सकते इस कारण एक है और क्षेत्रभेदकी अपेक्षासे इस पदार्थमें अनेकत्व नहीं है ऐसा यद्यपि है तो भी इस दृष्टिसे एकत्व अनेकत्व खण्डित न होगा। देखो अनादि कालसे ही धर्म अधर्म आकाश और काल इनके प्रदेश मिले हुए हैं और अनन्त काल तक मिले ही रहेंगे, इनका कभी पार्थक्य नहीं हो सका तिसपर भी ये चारों द्रव्य एक तो नहीं हैं, जुदे-जुदे हैं। यदि शङ्काकारके कथनके अनुसार इस हेतुको कि प्रदेशका खण्डन नहीं हो सकता, यदि एकत्व मान लिया जाय तो धर्मादिक चारों द्रव्योंमें एकत्व सिद्ध हो बैठेगा। अतः अशक्य विवेचनपनेके नातेसे एकत्व सिद्ध न करना चाहिए।

ननु ते यथा प्रदेशाः सन्ति मिथो गुम्फितैकसूत्रत्वात् ।
न तथा सदनेकत्वादेकक्षेत्रावगाहिनः सन्ति ॥ ४६२ ॥

एकसूत्रमें गुम्फितपना बताकर दोषापत्तिका यत्न करते हुए शंकाकार द्वारा अपनी शंकाका पोषण—अब शङ्काकार कहता है कि धर्मादिक द्रव्योंमें एकता का प्रसङ्ग आ जायगा इस कारणसे अशक्य विवेचन हेतुको असिद्ध कह डाला सो बात ठीक नहीं है। कारण यह है कि जिस प्रकार एक द्रव्यके प्रदेश एक सूत्रमें गूंथे हुए हैं, इस तरह एक क्षेत्रमें रहने वाले द्रव्योंके प्रदेश एक सूत्रमें गुम्फित नहीं हैं अर्थात् परस्पर चारोंका कोई एक अन्वय नहीं है इस कारण यह दोष नहीं आता कि अशक्य विवेचन बतानेसे उन चारों द्रव्योंमें एकता हो बैठेगी। शङ्काकार यहां अपनी शङ्का को पुनः पुष्ट कर रहा है कि जिस तरह एक द्रव्यके प्रदेश अखण्ड होते हैं और एक अन्वयमें एक सूत्रमें गुम्फित होता है, उस तरह अनेक द्रव्योंके प्रदेश चाहे वे एक क्षेत्र में रह रहे हैं, अनादिसे अनन्त काल तक रहते हैं फिर भी वे सर्व द्रव्योंके प्रदेश एक

अन्वयमें गुम्फित नहीं है, इस कारण जो यह हेतु दिया है कि प्रदेशका खण्डन नहीं किया जा सकता इस कारण सत् एक है यह हेतु बिल्कुल युक्तिसङ्गत है।

सत्यं तत्र निदान किमिति तदन्वेषणीयमेव स्यात् ।
येनाखण्डितमित्र सत् स्यादेकमनेकदेशवत्त्वेऽपि ॥ ४६३ ॥

अनेक प्रदेशवता होनेपर भी अखण्डितता होनेके कारणपर विचार करनेका शंकाकारका परामर्श उक्त शङ्काके समाधानमें कहते हैं कि यद्यपि यह बात ठीक है एक पदार्थके प्रदेश जैसे अखण्ड हुआ करते वैसे एक क्षेत्रमें रहने वाले अनेक पदार्थोंके प्रदेश नहीं हैं लेकिन इसका भी तो कारण ढूंढना चाहिए कि क्या कारण है कि एक द्रव्यके प्रदेश तो उसमें एक सूत्रमें गुम्फित हैं और वहीं रहने वाले अनेक द्रव्यके प्रदेश एक दूसरे द्रव्यमें गुम्फित नहीं हैं इसका कारण क्या है ? उसका कारण है तो यही कि वह सत् स्वयं अपने आपमें अखण्ड हैं और इस कारणका विवरण भी आगे किया जायगा। मगर सीधा ही यों कह देना कि प्रदेश विभाग नहीं हो सकता इस लिए सत् एक है यह तो कोई युक्ति वाली बात नहीं है हाँ जो उस शङ्का में सुधार किया है कि एक द्रव्यके प्रदेश एक अन्वयमें रहते हैं, एक क्षेत्रपर रहनेपर भी एक दूसरे द्रव्यके प्रदेश एक दूसरेमें गुम्फित नहीं हो पाते, यह बात ठीक है, पर इसका कारण भी तो समझना होगा ।

ननु तत्र निदानमिदं परिणममाने यदेकदेशेऽस्य ।
वेणोरिवपर्वसु किल परिणमनं सर्वदेशेषु ॥ ४६४ ॥

एकदेशमें परिणमन होनेसे सर्वदेशमें परिणमन होनेको अखण्डितताका बताकर शंकाकारका पुनः अपनी शंकाके पोषणका यत्न शङ्काकार कहता है कि एक द्रव्यके प्रदेश एक सूत्रमें गुम्फित हैं उसका कारण यह है कि एक द्रव्यके एक देशमें परिणमन होनेपर सर्व देशोंमें परिणमन होता है, यही चिन्ह इस बातको सिद्ध करता है कि उस द्रव्यके प्रदेश उसके सूत्रमें हैं अन्वयमें हैं, जैसे कि किसी बाँसको एक ओरसे हिला दिया जाय तो उस पूरे बाँसका हिलना बन जायगा। ऐसे ही जब एक द्रव्यके एक देशमें कोई परिणमन होता है तो सर्व देशमें परिणमन हो जाता है। इस कारणसे यह बात सिद्ध होती है कि पदार्थ एक ही इस कारण यह हो रहा कि उसके एक देशमें परिणमन है तो सर्व देशोंमें परिणमन है ।

तन्न यतस्तद्ग्राहकमिव प्रमाणं च नास्त्यदृष्टान्तात् ।
केवलमन्वयमात्रादपि वा व्यतिरेकिणश्च तदसिद्धेः ॥ ४६५ ॥

शङ्काकी पुष्टिकी अयुक्तता उक्त शङ्का के उत्तरमें कहते हैं कि देखिये ! शङ्काकारने अनेक सत् वाले पदार्थको एक समझ रखा है। जो बाँसका दृष्टान्त दिया है वह दृष्टान्त इसी बातको सिद्ध कर रहा है कि बाँस कहीं एक सत्ता वाला पदार्थ नहीं जितनी गांठें हैं उतने ही वहां सत् समझिये और इतना ही क्यों जितने परमाणु हैं प्रत्येक गांठमें अनन्त परमाणु हैं उनमें समूह वाला यह बाँस है उसमें यह दृष्टान्त घटा रहे हैं कि एक ओर हिलानेपर देखो सब हिल गया तो वहाँ एक देश और सब देशकी बात बन जायगी क्योंकि द्रव्य भिन्न-भिन्न हैं लेकिन किसी भी एक द्रव्यमें भिन्न-भिन्न सत् नहीं हैं। वहाँ एक देश सर्व देश क्या ? जितने भी प्रदेश हैं वे सभी एक सत् हैं, एक देशमें परिणमन होनेसे सर्वदेशमें परिणमन हो जाते हैं, यह हेतु वस्तु की अखण्डताका कारण नहीं हो सकता। इस बातको सिद्ध करने वाला न कोई प्रमाण है और न कोई दृष्टान्त है। और भी खोज कीजिए कि एक देशमें परिणमन होनेसे सब देशमें परिणमन होता है। इस वक्तव्यमें अन्वय व्यतिरेक घटित हो जाय, तब तो उसकी सिद्धि हो सकती है अथवा यदि केवल अन्वय मात्र सिद्ध होता है तो उससे भी कथनकी सिद्धि नहीं, या व्यतिरेक मात्र सिद्ध हुआ उससे भी कथनकी सिद्धि नहीं है। तो एक बाँसके हिलनेसे सब देशमें हिल जाता है, ऐसा अन्वय एक लौकिक दृष्टिसे मान लिया जाय तो भले ही कथंचित मान लो परन्तु व्यतिरेक तो सिद्ध नहीं होता और वस्तुतः अन्वय भी सिद्ध नहीं होता।

ननु चैकस्मिन् देशे कस्मिंश्चित्त्वन्तरेऽपि हेतुवशात् ।
परिणमति परिणमन्ति हि देशाः सर्वे सदेकतस्त्विति चेत् ।४६६

एक देशमें परिणमन होनेपर सर्व देशमें परिणमन होनेका अन्वयपक्ष बताकर शङ्काकार द्वारा अपनी शङ्काका पोषण—शङ्काकार कहता है कि देखिये किसी कारणवश किसी एक देशमें परिणमन होनेपर सर्व देशोंमें परिणमन होता ही है क्योंकि द्रव्यके उन सब प्रदेशोंकी एक ही सत्ता है, तब अन्वय बन गया ना कि कैसे यह कहा जा रहा कि इस कथनमें अन्वय सिद्ध नहीं होता। एकके सद्भाव होनेका नाम ही तो अन्वय है, सो बराबर यह देखा जा रहा जीवमें जैसे सुख परिणमन होता है तो जो जीवके किन्हीं प्रदेशोंमें सुख परिणमनमें तो सभी प्रदेशोंमें सुख परिणमा। जो भी कषायादिक परिणमन होता है तो एक देशमें जो परिणमा वही सब देशमें परिणमा, तो अन्वय बन गया ना ! इसीको सिद्ध करनेके लिये बाँसका दृष्टान्त दिया है। बाँसके एक भागको हिलानेका परिणमन हो तो उसके सब देशमें हिलनेका परिणमन हो जाता है।

न यत सव्यभिचारः पक्षोऽनैकान्तिकत्वदोषत्वात् ।
परिणमति समय देशे तद्देशाः परिणमन्ति नेति यथा ।।४६७।।

शङ्काकार द्वारा प्रस्तुत अन्वयपक्षकी दोषयुक्तता—उक्त शङ्काके उत्तरमें कहते हैं कि उक्त विधिसे घटाया गया अन्वय ठीक नहीं है क्योंकि इस अन्वयके मानने में अनेकांतिक दोष होता है। अनेक सत्ता वाले मिले हुए पदार्थोंमें तो यह बात कही जा सकती है कि किसी विवक्षित देशमें परिणमन होनेपर सभी देशोंमें याने सभी पदार्थोंमें परिणमन होता है। और, यह कथन प्रकट बातको सिद्ध करनेसे अलग है। शङ्काकारने यह बताया कि एक देशके परिणमन होनेमें सर्वदेशमें परिणमन होता है, बस यही एक सत्त्व होनेका कारण है। लेकिन यहां यह दोष आता कि जहाँ अनेक सत्त्व भी हों वहांपर भी यह बात घटित हो जाती है कि उसके एक देशमें परिणमन होनेपर सर्व देशमें परिणमन होगा, ऐसा बाँसका दृष्टान्त तो प्रकृत बातसे विरुद्ध बैठता है बाँस कहाँ एक सत् है? सूक्ष्म दृष्टिसे विचार किया जाय तो प्रत्येक पदार्थ का परिणमन जुदा-जुदा हो रहा है। भले ही समान परिणमन है और उसको एक परिणमन कह लीजिए जो एक भागमें हिलता है वह वहाँके परमाणुओंका परिणमन है और जहाँ जहाँ भी हिलता है वहाँ वहाँके परमाणुओंका वह परिणमन है। तो दृष्टान्त ही स्वयं विरुद्ध बातको सिद्ध कर रहा है उससे यह सिद्ध नहीं होता कि किसी विवक्षित देशमें परिणमन होनेसे अन्य देशमें भी परिणमन हो जाय तो उसे एक कह दिया जायगा। तब यह अशक्य विवेचन किसी भी प्रकारके समाधान देनेपर भी सत्की एकताका कारण नहीं बनता।

व्यतिरेके वाक्यमिदं यदपरिणमति सदेकदेशे हि।
क्वचिदपि न परिणमन्ति हि तद्देशाः सर्वतः सदेकत्वात् ।४६८।

शंकाकार द्वारा अपने प्रस्तुत हेतुमें व्यतिरेक व्याप्तिका कथन—शङ्काकार अब अपने प्रस्तुत इस हेतुका कि एक देशमें परिणमन होनेपर सर्व देशमें परिणमन होता है इसका पोषण व्यतिरेक पद्धतिसे कर रहा है कि देखो वस्तुके एक देशका परिणमन न होनेपर उसके सर्व देशोंमें भी परिणमन नहीं होता है क्योंकि उन सब देशोंकी एक ही सत्ता है। इस व्यतिरेक द्वारा यह सिद्ध हो जाता है कि एक देशमें परिणमन होनेसे चूंकि सर्व देशमें परिणमन होता है इस कारण सत् अखण्ड प्रदेशी है। यदि अन्वयपक्ष सही न बन सका सो न बनो प्रबल तो व्यतिरेक पक्ष होता है। सो यहाँ व्यतिरेक तो बन ही गया। तब वस्तुकी अखण्डदेशिता सिद्ध करनेके लिये जो बाँस सर्वका दृष्टान्त दिया वह युक्त ही है। इस प्रकार शङ्काकार अपनी पूर्व प्रस्तुत शङ्काका पोषण कर रहा है।

तन्न यतः सति सति वै व्यतिरेकाभाव एव भवति यतः।
तद्देशसमयभावैरखण्डितत्वात्स्वतः स्वतः सिद्धात् ।।४६९।।

शङ्काकार द्वारा प्रस्तुत हेतुकी व्यतिरेक व्याप्ति न बननेके कारण हेतुकी साध्य सिद्धिमें अक्षमता—उक्त शङ्काके समाधानमें कहा जा रहा है कि सत् अखण्ड देशी बांस पर्वकी तरह सिद्ध करनेकी बात युक्त नहीं है, क्योंकि उसकी सिद्धि करनेके लिये प्रस्तुत हेतुमें बताई हुई व्यतिरेक व्याप्ति युक्त नहीं बनती। इसका कारण यह है कि पदार्थ सत्स्वरूप है और सत् उत्पाद व्यय ध्रौव्य लक्षण वाला है। इसका तात्पर्य यह हुआ कि पदार्थ प्रतिसमय परिरमण करता रहता है। तो पदार्थके उस देशमें और सर्व देशमें प्रतिसमय परिणमन होता ही रहता है। व्यतिरेकका अवकाश ही कभी नहीं हो सकता। ऐसा कोई समय नहीं जिस समय वस्तुमें परिणमन न हो, ऐसा हो ही नहीं सकता। क्योंकि यदि किसी समय वस्तुमें परिणमन न माना जाय तो वह सत् ही नहीं ठहरेगा, पदार्थका अभाव सिद्ध हो जायेगा। जब परिणमन नहीं है तो सत्व भी नहीं है। तब शङ्काकारकी व्यतिरेक व्याप्ति नहीं बनती, इसी वजहसे एक देशमें परिणमन होनेसे सर्व देशमें परिणमन होता है यह हेतु वस्तुकी अखण्डप्रदेशिताका प्रयोजक नहीं बनता। यद्यपि वस्तु अखण्डप्रदेशी है और उसे ही शङ्काकार सिद्ध कर रहा है सो यह प्रयास सराहनीय है, किन्तु बांसका दृष्टान्त देकर प्रस्तुत हेतु द्वारा वस्तुकी अखण्डप्रदेशिताकी सिद्धि निर्दोष उपायसे नहीं कही जा सकती : एक वस्तुकी अखण्डप्रदेशिकताकी सिद्धि तो एकसत्ताकत्व हेतुसे बनती है।

एवं यकेपि दूरादपनेतव्या हि लक्षणाभासाः।
यदकिञ्चित्कारित्वादत्रानधिकारिणोऽनुक्ताः ॥ ४७० ॥

क्षलणाभासोंका प्रयोग न करके सुलक्षणके प्रयोगसे वस्तु स्वरूपके निर्णयका कर्तव्य—जैसे सत्का स्वरूप सिद्ध करनेके लिए जो अन्य अनेक युक्तियाँ दी हैं जिनपर विचार करनेसे वे सदोष सिद्ध हुई हैं ऐसे ही अन्य लक्षणाभासोंको भी दूरसे ही हटा देना चाहिये क्योंकि सदोष युक्तियाँ, सदोष लक्षणाभास यथार्थ स्वरूप सिद्ध करनेमें असमर्थ है। ऐसे लक्षणोंसे ही वस्तुका स्वरूप बताना चाहिये जिनमें अव्याप्ति अतिव्याप्ति व असंभव दोष न हों। इस क्षेत्र विचार वाले प्रसङ्गमें क्षेत्रकी अपेक्षासे निश्चयतः तो यह मानना चाहिये कि सत् एक सत्ताक है इस कारण अखण्ड प्रदेशी है एकक्षेत्री है। व्यवहारसे अर्थात् वस्तुका तिर्यक विस्तार समझानेके लिये उसमें प्रदेशोंकी अनेकता समझनी चाहिये, इस प्रसङ्गमें शङ्काकारका मूल प्रश्न था कि सत् एक है या अनेक है या उभय है या अनुभय? इस मूल प्रश्नका उत्तर द्रव्य क्षेत्र काल भावकी अपेक्षासे दिया जा रहा है। द्रव्यकी अपेक्षासे निश्चयतः सत् एक है व व्यवहारः प्रतिबोधनके अर्थ सत् अनेक बताया गया है गुण पर्याय आदिक अंशों द्वारा इसके पश्चात् क्षेत्रकी अपेक्षासे एक अनेक घटित किया जा रहा है जिसको यह सिद्ध किया गया है कि एक सत्ताक होनेसे सत् अखण्डप्रदेशी है और व्यवहारतः तिर्यग्विस्तार

के प्रतिपादनके लिये बताया गया कि उसमें अनेक प्रदेश हैं, उनकी दृष्टिसे वहाँ अनेकता है।

कालः समयो यदि वा तद्देशे वर्तनाकृतिश्चार्थात् ।
तेनाप्यखण्डितत्वाद्भवति सदेकं तदेकनययोगात् ॥ ४७१ ॥

कालापेक्षासे सत्के एकत्वका वर्णन—यह प्रकरण सत्के एकत्वके समर्थन का चल रहा है। सत् कथंचित् एक है, इसकी एकता द्रव्य और क्षेत्रकी अपेक्षा बता दी गई है। अब कालकी अपेक्षासे सत्का एकत्व बता रहे हैं। कालका अर्थ समय है अथवा द्रव्यका जो वर्तनाकार होना है अर्थात् काल द्रव्यके समयके निमित्तसे जो परिणमन होता है वस्तुतः वही काल कहलाता है। यहां कालका अर्थ सत् पदार्थमें जो पदार्थका परिणमन हो रहा है चूंकि वह परिणमन काल द्रव्यके समय पर्यायका निमित्त पाकर हो रहा है अतएव कार्यमें कारणका उपचार करके उस परिणमनको ही काल कह दिया गया है। यहाँ कालका अर्थ है परिणमना तो अब कालकी अपेक्षा सत्के एकत्वको निरखा जा रहा है। तो यहाँ द्रव्यत्वकी अपेक्षा वह सत् काल दृष्टिमें परिणमन दृष्टिमें अखण्डित है इस कारण एक है। परिणमनशून्य द्रव्य कहीं नहीं होता और उन सब परिणमनोंका सामान्य रूपसे जब दिग्दर्शन होता है तो वे सब एक हैं, परिणमना ही तो है। तो यों कालकी अपेक्षा परिणमनका कहीं खण्डन नहीं है, अतः परिणमन सामान्यकी दृष्टिसे सत् एक है।

अयमर्थः सन्मालामिह संस्थाप्य प्रवाहरूपेण ।
क्रमतो व्यस्तसमस्तैरितस्ततो च विचारयन्तु बुधाः ॥ ४७२ ॥

कालापेक्षासे सत्के एकत्वका विवरण—उक्त कथनका आशय यह है कि यहाँ परिणमन सामान्यकी अपेक्षा सत्को एकता देखा जा रहा है। इस सम्बन्धमें प्रवाहरूपसे जो सत चल रहा है उस सतको एक मालासे स्थापित करके फिर क्रमसे अलग-अलग या मिलाकर इधर-उधर सब ओरसे विचार करें तो वहाँ यह ज्ञात होगा कि एक समयमें रहने वाला जो सत है वह सत जितना और जैसा है सभी समयोंमें रहने वाला वह सत् उतना ही और वैसा ही है जब प्रतिसमयोंमें उसी सतको निरखा है तो परिणमन शून्य तो सत कभी रहता नहीं, प्रतिसमय परिणमता है, किन्तु वहाँ सत वहीका वही है। वहां परिणमन ऐसा विभिन्न नहीं जचता कि जिससे यह कहा जा सके कि अब यह सत वह नहीं है अन्य है। दृष्टान्तमें ऐसा समझें कि जिस जीवके जितने भी परिणमन होंगे होते रहें परिणमन, पर उन सब परिणमनोंमें भी जीव वही एक है। वहां जीव जैसा ही परिणमन देखा जा रहा है, क्योंकि है भी वैसा ही परिणमन। परिणमन कर करके भी जीव पुद्गल नहीं बन गया, अन्य कोई नहीं बन

गया। तो जीव सत्से भिन्न अन्य प्रकारका सत जचे बिना वहां परिणमन होता ही नहीं है। अतएव उस परिणमन सामान्यकी दृष्टिसे अपनी ही जातिमें सीमामें जो पर्यायें होती रहती हैं, उनमें प्रतिसमयमें रहने वाले सतको जब देखते हैं तब वही है। यों कालकी अपेक्षासे वह सत अखण्ड दीख रहा है, यों सत एक है।

न पुनः कालसमृद्धौ यथा शरीरादिवृद्धिरिति वृद्धिः।
अपि तद्धानौ हानिर्न तथा वृद्धिर्न हानिरेव सतः ॥ ४७४ ॥

सत्में हानि वृद्धिका अभाव -- उक्त कथनमें जो कालकी अपेक्षासे सत एक बताया है वहाँ केवल अपनी जातिके परिणमनको ही निरखा गया है कि प्रत्येक पर्यायमें वही एक सत प्रतीत होवे। स्वरूप भी इसी प्रकारका है वहाँ ऐसा नहीं है कि जैसे कालकी बृद्धि होनेपर शरीरादिककी वृद्धि होती है। जैसे समय गुजरता है बढ़ता है तो वहां शरीरमें बृद्धि होती है और फिर उसी शरीर व अनेक पदार्थोंमें जैसे जैसे कालकी हानि होती है यों सत पदार्थमें वृद्धि हानि होती हो सो नहीं है। क्योंकि सत की वास्तवमें न तो बृद्धि है और न हानि है। जीवमे सत एक चैतन्य स्वरूप है जो भी अखुण्ड चेतना है, अमूर्त पदार्थ है वह कितना ही परिणमे पर सर्वत्र वह वही है, उसमें वृद्धि क्या है? जितनी शक्तियाँ हैं जैसा स्वरूप है वही अनादि अनन्त है उसमें हानि वृद्धि नहीं है। पुद्गलमें पदार्थ है, एक एक परमाणु तो जितने भी अपने आपमें एक स्वरूप रख रहे हैं, अखण्ड हैं वे अपने आपमें एक हैं। उस एक परमाणुमें हानि क्या? और बृद्धि क्या? जो मिलकर स्कंध बनता है और उन स्कंधोंमें बृद्धि हानि देखी जाती है, वह बृद्धि हानि एक सतमें नहीं है किन्तु वहाँ अनेक सतोंका पिण्ड है, उसमें वृद्धि हानि है। कम सत रह गए, कुछ अनेक सत हो गए आदिक रूपसे ही बृद्धि हानि है, पर एक सतमें न तो वृद्धि होती और न हानि होती है। वह तो सदा ही कालकी अपेक्षा एक सा ही रहता है, यों सत कालकी अपेक्षासे द्रव्यार्थिक नयके अभिप्रायसे एक है।

ननु भवति पूर्वपूर्वभावध्वंसात्तु हानिरेव सतः।
स्यादपि तदुत्तरोत्तरभावोत्पादेन वृद्धिरेव सतः ॥ ४७५ ॥

सत्में हानि वृद्धि बतानेके लिये शङ्काकारकी शङ्का—यहाँ शङ्काकार कहता है कि पूर्व-पूर्व भावोंका विनाश होनेसे सतकी हानि होती है और नवीन नवीन भावोंका उत्पाद होनेसे सतकी बृद्धि होती है, ऐसा माननेपर क्या हानि है? पदार्थमें यह स्वरूप पाया ही जाता है कि उसमें नवीन पर्यायें उत्पन्न हों और पूर्व पर्यायका विनाश हो। तो जो पर्याय थी उस पर्याय थी उस पर्यायका विनाश हो तो

लो हानि ही तो हो गयी। अब उस द्रव्यमें परिणमन न रहा और नवीन पर्यायका उत्पाद न हुआ तो सतमें एक नई बात आई तो कोई बृद्धि ही तो हुई ! इस तरह पूर्व पर्यायके विनाशसे और उत्तरोत्तर पर्यायके उत्पादसे हानि और वृद्धि माननेमें क्या हानि है ?

नैवं सतो विनाशादसतः सर्गादसिद्धसिद्धान्तात् ।
सदनन्यथाथ वा चेत् सदनित्यं कालतः कथं तस्य ॥ ४७६ ॥

सत्की हानि वृद्धि माननेमें दोषापत्ति बताते हुए उक्त शंकाका समाधान—उक्त शङ्काका समाधान कर रहे हैं कि पूर्व-पूर्व भावका विनाश होनेपर सतकी हानि और उत्तर-उत्तर पर्यायके उत्पाद होनेसे सतकी वृद्धि माननेपर सतका विनाश हो जायगा और असतका उत्पाद हो जायगा, यह दोष आता है। इस कारण ऐसा मानना युक्तिसङ्गत नहीं है। पूर्व पर्यायका नाश हुआ, उस नाशके साथ सतकी हानि मान ली तो इसका अर्थ यह हुआ कि सत् तो रहा ही नहीं, क्योंकि पूर्वपर्याय मात्र इस तरह ही सतको देखा जा रहा था। तो पूर्व पर्यायके नाश होनेपर सत्का भी नाश हो गया, पर क्या ऐसा कहीं होता है ? कोई भी वैज्ञानिक यह नहीं मान सकता कि जो है उसका समूल नाश हो जाय। भले ही कोई परिणमन हो, होता रहे, पर उस सत्का मूलसे नाश नहीं होता, इसी प्रकार कभी भी असत्का उत्पाद नहीं होता, जो कुछ है ही नहीं और कुछ बन जाय ऐसा कहीं नहीं होता। जो है उसकी पर्यायें कितनी ही बदलती रहें बदल जायें और पूर्व पर्याय विनष्ट होती जाय, पर सत् सत् ही है पूर्व पर्यायका नाश होनेपर कहीं सत्का नाश नहीं होता। सत् जिस परिणमनमें था अब उस परिणमनमें न रहकर उत्तर परिणमनमें आया। दूसरी बात यह है कि यदि विनाश और उत्पाद क्रमसे हुआ करते होते तो यह बात कुछ मानी जा सकती थी, किन्तु विनाश और उत्पाद एक ही साथ होते हैं। जैसे सीधी अंगुली है और उसे थोड़ी टेढ़ी की तो कहीं ऐसा नहीं है कि पहिली सीधी मिटी हो और पीछे अंगुली टेढ़ी हुई हो, किन्तु अंगुलीके टेढ़ी होनेका ही नाम सीधाका मिटना है। सीधीके मिटनेका ही नाम टेढ़ी होना है। तो यहाँ उत्पाद और विनाश अपेक्षासे हैं ये क्रमशः नहीं होते। इस कारण सतका विनाश नहीं और असत्का उत्पाद नहीं। तब सत्में न बृद्धि होती है और न हानि होती, जो है वह है ही सदाकाल। यही है वस्तु स्वरूप। जब इस एकत्वकी चर्चाको अपने आत्मामें घटित किया जाता है तो यह विदित होता है कि मैं जो सहज ज्ञानानन्द स्वरूप मात्र हूं सो मैं अनादिसे अनन्त काल तक ऐसा ही हूं। मुझमें न कभी कमी आती है न बेशी। मैं सदा वही रहता हूं। आज मनुष्य हूं, पहिले मानो और कुछ था। पशु था तो पशु पर्यायसे मरण करनेपर मनुष्य पर्यायमें आया। वहां कभी यह नहीं होता कि पशु पर्याय मिटी तो मैं मिट गया या मनुष्य

पर्याय मिली तो मैं उत्पन्न हो गया। मैं वही सत् हूं, मुझमें हानि वृद्धि नहीं होती। अतएव यह शङ्का व्यर्थ है कि पूर्व पर्यायका विनाश होनेपर सत्की हानि हो जाय और उत्तर पर्यायका उत्पाद होनेपर सत्की वृद्धि हो जाय।

निरन्तर परिणमन होनेपर भी सत्के एकत्वका अप्रतिघात—अब यदि इन दोषोंसे बचनेके लिए यह मान लिया जाय कि वस्तु सर्वथा एकरूप ही है, तब उसमें कालकी अपेक्षासे अनित्यता न आयगी, तब परिणमन रुक जायगा। वस्तुका स्वरूप है यह कि वह परिणमन करता हुआ सदाकाल बना रहे। कोई भी पदार्थ कुछ बदले नहीं तो उसका सत्त्व नहीं रह सकता। बदलेंगे पर अपनी जातिमें बदलेंगे। प्रतिसमय परिणमन होता है। यह आत्मा जो कोई शुद्ध भी हो गया सिद्ध बन गया तो सिद्ध भगवान हो जानेपर भी वहाँ प्रतिसमय केवल ज्ञान अनन्त आनन्द बर्तता ही रहता है। वहाँ कभी भी कमी बेशी नहीं होती कि किसी समय ज्ञान कम हो, किसी समय अधिक! वैसाका वैसा ही परिपूर्ण ज्ञान प्रतिसमय रहता है। किन्तु प्रतिसमय ज्ञान बनता ही तो रहता है। इसी प्रकार प्रतिसमय वहाँ आनन्द बनता ही तो रहता है। बल्कि जिस आनन्दमें विशदृशता नजर आये, अभी कम आनन्द था, अब अधिक आनन्द हो गया, अभी आनन्द न था अब आनन्द आ गया, ऐसी अगर विसदृशता आती है तो समझना चाहिए कि वह शुद्ध आनन्द नहीं है। इसी प्रकार जहां ज्ञानमें कमी बेशी नजर आती है, जैसे आजकल इन जीवोंके ऐसा ही ज्ञान है, अभी थोड़ा ज्ञान है, अब कुछ बढ़ गया, कुछ घट गया। इन्द्रियाँ यदि काम करती हैं तो ज्ञान बढ गया और यदि इन्द्रियाँ काम नहीं करती हैं तो ज्ञान घट गया अथवा मस्तिष्क यदि शक्तिमान है तब ज्ञान और किस्मसे चलता है और यदि मस्तिष्क निर्बल हो गया तो ज्ञानमें भी न्यूनता आती है। तो यह ज्ञान शुद्ध ज्ञान नहीं है, शुद्ध ज्ञान तो समानतासे प्रतिसमय चलता रहता है। तो प्रत्येक पदार्थ प्रतिसमय परिणमन करता है फिर भी वह वहीका वही रहता है। तो जब यहां सामान्य परिणमनकी दृष्टिसे निरखते हैं तो कालकी अपेक्षा से सत् एक है इसमें कोई भी बाधा नहीं है।

नासिद्धमनित्यत्वं सतस्ततः कालतोऽपि नित्यस्य।
परिणामित्वान्नियतं सिद्धं तज्जलधरादिदृष्टान्तात् ॥ ४७७ ॥

द्रव्य दृष्टिसे नित्य पदार्थका पर्याय दृष्टिसे अनित्यत्व—कोई शङ्काकार यह कहे कि अगर कालकी अपेक्षा सत् एक रूपसे मान लिया जाय तो अनित्यता नहीं रहती तो न रहे। सो यह बात नहीं कह सकते क्योंकि पदार्थमें अनित्यता असिद्ध नहीं है। प्रत्येक पदार्थ कालकी अपेक्षासे कथंचित् नित्य है कथंचित् अनित्य है। जैसे जीव कभी किसी पर्यायमें है, कभी किसी पर्यायमें है। पर्याय दृष्टिसे तो

अनित्य है, पर जीव तो वहीका वही है। भाव भी इसका बदलना रहता है—कभी क्रोध मान, माया, लोभ आदि कषायोंमें, कभी शान्तिमें कभी विवेकमें, कभी मूर्खता में यह परिणमन करता रहता है। तो भले ही नाना परिणमन करे, किन्तु द्रव्यदृष्टि से वह सत् एक ही है। पर्याय रूपसे उस जीवने यहाँ परिणमन किया। पदार्थ कथंचित् नित्य है और कथंचित् अनित्य, यह बात असिद्ध नहीं, किन्तु प्रमाणसिद्ध है। क्योंकि पदार्थ प्रतिसमय परिणमन करता ही रहता है। जैसे मेघ कितनी तरहके आकार बदलते हैं, बदलते रहें पर मेघोंमें आने वाले जो परमाणु पुञ्ज हैं वे तो वही के वही हैं। चाहे ये दृष्ट पदार्थ जला दिये जायें उनका कुछ से कुछ परिणमन कर दिया जाय पर द्रव्यदृष्टिसे देखो तो परमाणु वहीके वही हैं। वस्तु परिणमन करते हुए भी सदाकाल वहीका वही रहता है।

आपनेमें नित्यत्व अनित्यत्वके यथार्थ चिन्तनका परिणाम—अपने आप में भी नित्यत्व अनित्यत्वकी यह बात समझने पर एक सद्विवेक जगता है कि मैं सदाकाल एक हूं, भले ही आज मनुष्य पर्यायमें हूं पर यह कितने दिनोंका जीवन है? यहां जो भी समागम मिले हैं वे स्पष्ट पर पदार्थ हैं। उनमे आत्माकी कोई परिणति नहीं होती। यह आत्मा ही अपने ज्ञानके अनुसार विकल्प बनाकर सुख और दुःख मानता है। वस्तु तो जहाँ जिस प्रकार है उस प्रकार ही पड़ा हुआ है। उनका परिणमन उनके कालसे जब जैसा होना है होता है। यह जीव मोहवश कुछसे कुछ विचार करता हुआ सुख दुःख मानता है, पर पदार्थोंसे तो यह स्पष्ट भिन्न है और अपने आपके परिणमनमें देखा जाय तो जो कर्मजन्य परिणमन हैं उन परिणमनोंसे इसका स्वभाव भिन्न है। तो जो वास्तविक सत् है उस दृष्टिमें ही इसको शान्तिका मार्ग मिलेगा, बाह्य पदार्थोंके मोहमें शान्ति नही मिल सकती। मोह अज्ञानमें ही होता है. अतः मोह को अज्ञान ही कहते हैं। वस्तु स्वयं उत्पाद व्ययध्रौव्य स्वरूप है, इसका यथावत् श्रद्धान हो तो वहाँ मोह नहीं रहता। प्रत्येक पदार्थ अपने ही स्वरूपमें उत्पाद व्यय करते हुए रहा करते हैं, किसी अन्य पदार्थकी परिणतिसे किसीमें उत्पाद व्यय नहीं होता और न किसी अन्य पदार्थका स्वरूप लेकर कोई ध्रुव रहता है, सद्रूप होता है। फिर एक का दूसरेसे सम्बन्ध क्या है। मुझसे किसी अन्य जीवका या पुद्गलादिका सम्बन्ध क्या है ? कुछ भी नहीं, इस प्रकार वस्तुके स्वातन्त्र्यका परिज्ञान जहाँ होगया वहाँ मोह नहीं रह सकता। जहाँ मोह नहीं वहाँ आकुलता नहीं है क्योंकि निर्मोहीके यह परिणाम ही नहीं हो सकता कि किसी भी परकी परिणतिसे मुझमें कुछ परिणमन, सुधार, बिगाड़ हो सकता है।

तस्मादनवद्यमिदं परिणममानं पुनः पुनः सदपि।
स्यादेकं कालादपि निजप्रमाणादखण्डितत्त्वाद्वा ॥४७८॥

पुनः पुनः परिणमनमान सत्के भी द्रव्यार्थिकनयमें कालापेक्षया एकत्व का निर्णय—उक्त विवरणसे यह बात निर्दोष रीतिसे सिद्ध होती है कि सत् बार बार परिणमते हुएको काल दृष्टिसे भी द्रव्यार्थिकनयके अभिप्रायमें वह एक ही है क्योंकि सदैव वह अपने ही परिमाण रहता है तथा वह अखण्डित ही है। सत्का जितना परिमाण अनादिसे अब तक भी वही है और भविष्यमें अनन्तकाल तक भी उतना ही परिमाण है। भले ही सत् परिणमन कर रहा है और करता रहेगा। जैसे यह जीव पदार्थ अनादिसे परिणमन करता चला आया, पर वह जीव ही रहा जीव अपने परिणमनको त्यागकर अन्यके परिणमन रूप न हो सका अतः उसका जितना परिणाम है उतना ही वह बना रहता है और अखण्डित है इस कारण कालकी अपेक्षा वह एक है। प्रतिसमयके परिवर्तनसे इस सत्में किसी प्रकारकी न्यूनता या अधिकता नहीं होती अतः द्रव्यार्थिकनयसे यह कालकी अपेक्षा भी सत् एक है।

भावः परिणाममयः शक्तिविशेषोऽथवा स्वभावः स्यात्।
प्रकृतिः स्वरूपमात्रं लक्षणमिह गुणश्च धर्मश्च ॥ ४७९ ॥

भावापेक्षया सत्के एकत्वके प्रतिपादनके प्रसङ्गमें भावके नामान्तर भूत परिणाम, शक्ति व विशेषका निर्देश— अब भावकी अपेक्षासे सत्के एकत्वका विधान कर रहे हैं। वस्तु चतुष्टयसे गुम्फित है, द्रव्य, क्षेत्र, काल, भावमय है और द्रव्यकी अपेक्षा भी वस्तुमें एकत्व अनेकत्व सिद्ध होता है, क्षेत्रकी अपेक्षा भी एकत्व और अनेकत्व प्रतीत होता है। कालकी अपेक्षासे भी एकत्व और अनेकत्वकी प्रतीति है। इस प्रसंगमें एकत्वका कथन किया जा रहा है, सो द्रव्य, क्षेत्र, कालकी अपेक्षासे एकत्वका वर्णन किया गया। अब भावकी अपेक्षा सत किस विधिमें एक है इसका वर्णन किया जायगा। इस गाथामें भावके नामान्तरका वर्णन है। इस नामके शब्दार्थ के परिज्ञानसे भावकी अपेक्षा वस्तु एक है इसके जाननेमें बहुत सहयोग मिलता है। भावके नामान्तर हैं ये। परिणाममय भाव अर्थात् परिणाम। यहां परिणामसे मतलब परिणमनका नहीं है किन्तु एकस्वभावरूप परिणमन होकर पर्यायमें जो बात आई है वहाँके परिणाम मात्रको लक्ष्यमें रखकर यह शब्द इस वाच्यमें प्रयुक्त होता है। भावका दूसरा नाम है शक्ति ! पदार्थमें जिस जिस रूप पर्यायसे परिणमनेकी योग्यता है उस योग्यताको शक्ति कहते हैं। शक्ति शाश्वत होती है, भाव भी शाश्वत है। यदि शक्ति न हो तो उस प्रकारसे परिणमन नहीं हो सकता। भावका एक नाम स्वविशेष भी है। पदार्थ तो जो हैं सो ही है अखण्ड है। उस पदार्थको समझनेके लिये उसमें जो तिर्यक रूपसे भेद करके उसकी विशेषता बताई जाती है वे सब विशेष भाव कहलाते हैं। जैसे आत्मा जो है सो ही है। उस आत्माको समझनेके लिए जो उसके शाश्वत धर्मके भेद किए जाते हैं। जैसे—ज्ञान, दर्शन, आनन्द आदिक। तो ये सब विशेष भाव कहलाते हैं।

भावके नामान्तरभूत स्वभाव, प्रकृति, स्वरूप, गुण व धर्मका निर्देश—भावका एक नाम है स्वभाव। स्व मायने पदार्थ उसका जो सहज शाश्वत होना है, वह कहलाता है स्वभाव ! स्वभाव स्वभाववालसे भिन्न है। बात एक ही है, किन्तु समझनेके लिये उस पदार्थका स्वभाव बताकर गुण गुणी जैसे भेद करके समझाया जाता है। भावका एक नाम है प्रकृति ! प्रकृति भी वस्तुका स्वभाव है। जिसमें कुछ परिणतिसे सम्बन्ध देखा जा रहा हो परिणमनोंको कर सकनेके जो भाव हैं वे प्रकृति कहलाते हैं। भावका एक नाम है स्वरूप ! पदार्थका स्वयंका जो सहज रूप है वह स्वरूप कहलाता है। भावका एक नाम है लक्षण। लक्षण चिन्हको कहते हैं। जिस चिन्हके द्वारा उस सहज वस्तु तत्त्वको जान लिया जाता है उसका नाम लक्षण है। लक्षण भेद कथनमें कहा जाता है, वस्तु तो अभेदरूप है, उसका जो कोई चिन्ह प्रकट हुआ हो अर्थात् जिस भावपर उपयोग किया गया हो, उस चिन्हसे पदार्थका बोध होता है। तो भावका नाम वह लक्षण कहना युक्त ही है। भावका एक नाम है गुण ! गुणकी व्युत्पत्ति है गुण्यते भिद्यते अनया: वस्तु इति गुण:, जिसके द्वारा वस्तु भेदी जाय, अखण्ड वस्तुको समझानेका प्रयत्न किया जाय, ऐसे भावको गुण कहते हैं। भावका एक नाम है धर्म ! पदार्थ अपने आत्मामें अपने स्वरूपमें जिस स्वभावको धारण करता है, उसका नाम है धर्म। ये सब भावके नामान्तर हैं। यह नाम द्रव्यका इस कारण बताया गया है कि भावकी अपेक्षासे यहाँ एकत्व दिखाना है। तो उस एकत्वको दिखानेका पुरुषार्थ सुगमतया सफल हो जाय, इसलिये पहिले भावके नामान्तर बताये हैं।

तेनाखण्डतया स्यादेकं सच्चैकदेशनययोगात्।
तल्लक्षणमिदमधुना विधीयते सावधानतया ॥ ४८० ॥

भावापेक्षया सत्के एकत्वके प्रतिपादनकी सूचना—भावकी दृष्टिसे द्रव्यार्थिकनयकी विवक्षामें चूंकि वह सत्ता अखण्डित है, इस कारण वह एक है। प्रत्येक पदार्थ अपने भावसे अखण्डित है। और अखण्डितको ही एक कहते हैं। कितने ही भावोंका परिज्ञान किया जाय वस्तुमें भाव सामान्यकी दृष्टिसे वह सब भावोंरूप है और वहां भाव कोई अपनी प्रथक-प्रथक सत्ता लिए हुए नहीं हैं। सत् तो वहाँ एक ही है। उसका दिग्दर्शन भावके रूपमें कराया जाता है। ऐसी स्थितिमें एक भावमें सभी भाव अन्तर्लीन हैं। अतएव भावोंकी अपेक्षा वह वस्तु अखण्डित है, अतएव एक है, इस ही एकत्वको सावधानीसे इस प्रसङ्गमें बताया जा रहा है, उसको सावधानीसे सुनना चाहिये।

सर्वं सदिति यथा स्यादिह संस्थाप्य गुणपंक्तिरूपेण।
पश्यन्तु भावसादिह निःशेषं सन्नशेषमिह किञ्चित् ॥४८१॥

भावापेक्षया सत्के एकत्वके दर्शनके लिये भावमालाको भावसामान्य रूपमें दर्शनका विधान—भावकी अपेक्षासे सत् एक किस प्रकार है ? उसको समझानेका इस गाथामें यत्न किया गया है और वह सत् है सम्पूर्ण सत् उसको गुणों की पंक्तिरूपसे अपने विचारमें प्रधान करें फिर देखें कि वे सबके सब भावरूप ही दिखाई देते हैं। जैसे एक जीव तत्त्वको ज्ञान दर्शन आनन्द आदिक अनेक भावोंको उपयोगमें पंक्तिबद्ध कर लिया जाय। अब एक ओरसे अन्त तक उन सब भावोंको निरखते जाइये तो पदार्थ भावमय नजर आयगा। भावके सिवाय और कुछ शेष भी वहाँ नहीं बचता है। तब भावदृष्टिसे सर्वत्र वहाँ अखण्डितपना ही प्रतीत होता है। कहीं वह वस्तु खण्डित हो गई हो, ऐसा भाव वहां नहीं है। क्योंकि एक वस्तुमें जितने भाव होते हैं उन्हीं भावोंको ही पंक्तिमें रखा गया है। यदि आत्माके भावोंको पंक्तिमें तो रखा और उसमें अन्य भाव भी दो एक रख दिए जायें जैसे रूप, रस आदिक तो वहाँ भावोंकी धारा न बनेगी। वहाँ वस्तु खण्डित हो जायगी। वस्तुत्व सिद्ध न होगा तो एक समग्र वस्तुके गुणोंको पंक्तिरूपसे रखकर फिर उनको देखा जाय तो सब भावोंमय ही प्रतीत होता है, इस कारण भावोंकी अपेक्षा सत् एक है।

एकं तत्रान्यतरं भावं समपेक्ष्य यावदिह सदिति।
सर्वानपि भावानिह व्यस्तसमस्तानपेक्ष्य सत्तावत् ॥ ४८२ ॥

भावापेक्षया सत्के एकत्वका दर्शन—किसी भी सत्में जिन भावोंपर उपयोग दिया गया है उन भावोंमेंसे किसी एक भावकी अपेक्षा विचार करें तो वहाँ सत् जितना दृष्टिगत हुआ सभी भावोंकी अपेक्षा रखकर विचार करें तो भी वह सत् उतना ही है अथवा कभी उन भावोंकी अपेक्षा पृथक्-पृथक भी विचार करें तब भी वह सत् उतना ही है या सब भावोंसे समुदित कर विचार करें तब भी वह सत् उतना ही है, इस कारण भावोंकी अपेक्षा किसी भी ढङ्गसे विचार किया जाय तो वहाँ सत् में भेद अथवा खण्ड नहीं हो पाता। वह वस्तु समग्र उतने ही सत् रूप है। जैसे जब जीव द्रव्यको ज्ञानरूपसे विचार किया तो वह समग्र जीव द्रव्य ज्ञानमय है। वहीका वही जीव द्रव्य वस्तु जब आनन्द गुणकी प्रधानतासे निरूपित होता है तब वही जीव वस्तु आनन्दमय है। तो ज्ञानमय दीखा तब भी वही वस्तु प्रतीत हुआ, आनन्दमय दीखा तब भी वही वस्तु प्रतीत हुआ ! वस्तु एक स्वभावरूप है, उसको समझनेके लिए वहां गुणभेद करके प्रतिपादन किया जाता है, पर तत्त्वतः एक भावरूप है। तब अनेक भावोंके माध्यमसे भी वर्णन किया जाय तब भी वह सर्वत्र एक रूप ही विदित होगा।

न पुनर्द्व्याणुकादिरिति स्कन्धः पुद्गलमयोऽस्त्यणूनां हि।
लघुरपि भवति लघुत्वे सति च महत्त्वे महानिहास्ति यथा ॥४८३

सत्में न्यूनता व अधिकताका अभाव– कोई यदि यहाँ ऐसी आशङ्का करे कि द्वयणुक आदिक स्कन्धोंमें तो यह बात एकदम साफ नजर आती है कि परमाणुओंके कम होनेपर ही पदार्थ छोटा हो जाता है और परमाणुओंके अधिक होनेपर भी पदार्थ बड़ा हो जाता है तो कैसे नहीं कोई पदार्थ न्यून और अधिक होगा ? सामने विदित ही हो रहा है। इसी प्रकार यह सत् प्रत्येक सत् भी किन्हीं कारणोंमें परिस्थितियोंमें छोटा हो जाता होगा और किन्हीं परिस्थितियोंमें बड़ा हो जाता होगा इसमें कौन सी शङ्काकी बात है ? तब उसका उदाहरण सामने ही दृष्टगत होता है, कोई पत्थरका टुकड़ा तोड़ दिया, छोटा हो गया, कोई मिट्टीका लौंधा जोड़ दिया, बड़ा हो गया। तो यहां छोटे–बड़ेकी स्थिति बन जाया करती है। तो सभी स्थितियों में यह बात सम्भव है फिर न्यूनता और अधिकता कैसे न आयगी ? और जब सतमें न्यूनता और अधिकता आ सकती है तो वह एक नहीं कहला सकता। फिर ऐसी कोई शङ्का कर सकता है, किन्तु उसकी यह आशङ्का ठीक नहीं है। ठीक यों नहीं है कि जो उदाहरण दिया गया है वह स्कंध एक सत् नहीं है, वह अनेक सतोंका पिण्ड है। अतएव वहां यह बात सम्भव है कि अनेक सत् और आ जानेपर अधिक हो जायेंगे। किन्तु एक सत्में किन्हीं भावोंकी शक्तियोंके बिखरनेका प्रश्न ही नहीं है और न किसी वस्तुकी शक्तियोंके नाश होनेका प्रश्न है। इस कारण सत्में न्यूनता और अधिकता नहीं आ सकती है।

अयमर्थो वस्तु यदा लक्ष्येत विवक्षितैकभावेन।
तन्मात्रं सदिति स्यात् सन्मात्रः स च विवक्षितो भावः ।४८४

सत्की विवक्षित भावमात्रताका दर्शन– उक्त कथनका सारांश यह है कि जब वस्तुको किसी विवक्षित एक भाव रूपसे निरखा जाता है उस समय वह वस्तु उस ही विवक्षित भावरूप होता है। विवक्षित भाव भी उस सत्ता मात्र ही होता है। जैसे जब जीव वस्तुको ज्ञानभावरूप देखा तो वह वस्तु ज्ञानमय ही प्रतीत होता है। ज्ञानमय प्रतीत होनेपर बात क्या जानी गई ? जो उस आत्मपदार्थकी सत्ता है जिस प्रकार है, उस सत्ता मात्र ही तो वह समझा गया। इसी कारण जब संत जन योगमें जुटते हैं तो वहां ज्ञानमें ज्ञानका अनुभव है। जब ज्ञानमें ज्ञानका अनुभव होता है तो अपने सत्त्व मात्र प्रतीत है, इसी कारण वहां विकल्पका अवकाश नहीं है। तो जब जो पदार्थ जिस किसी भी विवक्षित भावरूप निरखा जाता है तब वह तन्मय है और उस तन्मयताकी प्रतीतिमें विदित होता रहता है वही वस्तु अपनी सत्तामात्र है तब वह भावकी अपेक्षा पदार्थ अखण्डित है। इसमें किसी प्रकारकी बाधा नहीं आती।

यदि पुनरन्यतरेण हि भावेन विवक्षितं सदेव स्यात्।
तन्मात्रं सदिति स्यात् सन्मात्रः स च विवक्षितो भावः ।४८५।

विवक्षावश सत्का किसी भी विवक्षित भावमात्र रूपमें दर्शन—वस्तुको जिस भावरूपसे विवक्षित करके निरखा जारहा था, उस समय वस्तुमें विवक्षित भावमात्र प्रतीत होरहा था। वही पदार्थ जब अन्य किसी भावसे विवक्षित होता है तो वही सत् इस विवक्षित भावरूप होता है। जैसे—जिस जीव द्रव्यको पहिले ज्ञानभाव रूपसे निरखा जा रहा है तो यह जीव आनन्दमय प्रतीत हो रहा है। वस्तु वही एक है पर जिस भावसे विवक्षित किया गया उस भावरूप भी विदित हुआ और वे सब विवक्षित भाव भी उस वस्तुके सत्ता मात्र ही होते हैं। अतएव भावकी अपेक्षासे वस्तु अखण्डित ही है, एक ही है।

अत्रापि च संदृष्टिः कनकः पीतादिमानिहास्ति यथा।
पीतेन पीतमात्रो भवति गुरुत्वादिना च तन्मात्रः ॥४८६॥

भावापेक्षया एकत्वकी जानकारीके लिये एक स्थूल दृष्टान्त—इस सम्बन्धमें यह दृष्टान्त है कि जैसे सोना पीत आदिक गुण वाला है, पीतपना, गुरुपना आदिक अनेक धर्म वहां हैं किन्तु जब उस सोनेको पीतरूपमें निरखा जाता है तब वह स्वर्ण केवल पीतस्वरूप ही विदित होता है। वही सोना जब गुरुत्वादिक धर्मसे विवक्षित होता है तब वह गुरुत्वमात्र विदित होता है, विवक्षित होता है तब वह गुरुत्वमात्र विदित होता है पर किसी भी विवक्षित भावमें देखा जाय वह भावमात्र वस्तु दीख रही है। तो वहां दीख क्या रहा है? वस्तु अपनी सत्ता मात्र ही विदित होती है। यों सोना उन समस्त भावोंसे भी खण्डित नहीं होता। अतएव भावदृष्टिसे वह स्वर्ण अखण्डित है।

न च किञ्चित् पीतत्वं किञ्चित् स्निग्धत्वमस्ति गुरुता च।
तेषामिह समवायादस्ति सुवर्णस्त्रिसत्वसत्ताकः ॥ ४८७ ॥

दृष्टान्तमें भावोंके पार्थक्यके अभावका कथन—उक्त गाथामें जो दृष्टान्त कहा गया है उसमें ऐसा नहीं है कि स्वर्णमें पीतपना स्निग्धपना और गुरुत्वपना है। तो कुछ सोना पीला हो और कुछ सोना स्निग्ध हो और कुछ सोना गुरु हो फिर इन तीन गुणोंका उस स्वर्णमें समवाय होनेपर उन तीनोंकी सत्ताको लेकर फिर एक अखण्ड सत्ता वाला स्वर्ण बना हो, ऐसा नहीं है। यहां प्रसङ्गमें भावकी अपेक्षासे द्रव्यमें एकत्व बताया जा रहा है और दृष्टान्त दिया जारहा है स्वर्णका कि जैसे सोना ही पीतरूपसे विवक्षित होता है तो वह केवल पीत ही प्रतीत होता है और जब वही सोना गुरुत्व धर्मसे विवक्षित होता है तब ही गुरु प्रतीत होता है, ऐसा बताया गया है तो उस सम्बन्धमें यह आशङ्का न करनी चाहिए कि सोना जब पीला है, स्निग्ध है,

गुरु है तो कोई अंश पीला है और कोई अंश स्निग्ध है, कोई अंश गुरु है और इन तीनोंको मिलाकर एक अखण्ड सत्ता स्वर्णके दर्शन हैं, ऐसा नहीं है, किन्तु कैसा है ? इस विषयको अगली गाथामें स्पष्ट करते हैं ।

इदमत्र तु तात्पर्यं यत्पीतत्वं गुणः सुवर्णस्य ।
अन्तर्लीनगुरुत्वाद्विवक्ष्यते तद्गुरुत्वेन ॥ ४८८ ॥

दृष्टान्तमें एक भावमें अन्य भावोंकी अन्तर्लीनताका कथन— इस प्रसङ्गमे दिए गए स्वर्ण दृष्टान्तमें जो भावकी अपेक्षा कथन किया जा रहा है उसका तात्पर्य यह है कि सोनेका जो पीतगुण है उसमें गुरुत्व गुण अन्तर्लीन हैं इस कारण जब सोना गुरुत्व रूपसे विवक्षित होता है तो वह केवल गुरु ही प्रतीत होता है । पीतपना, गुरुपना ये स्वर्णमें भिन्न भिन्न अंशोमें नहीं हैं, किन्तु वही सारा स्वर्ण पीला है और वही सारा स्वर्ण स्निग्ध है । ये तीन गुण प्रथक-प्रथक हुए । इनकी सत्ता न्यारी-न्यारी हुई और फिर इन तीनोंको मिलाकर कोई एक अखण्डता सिद्ध की गई हो सो ऐसा नहीं है, किन्तु स्वर्ण स्वयं अखण्ड है और उसका सब कुछ धर्म अखण्ड है । इस तरह भावकी अपेक्षा उस स्वर्णमें अखण्डता होती है । तो जिस तरह स्वर्णमें भावकी अपेक्षा एकत्व है इसी प्रकार प्रत्येक सतमें जानना चाहिए कि द्रव्यार्थिक नयके अभिप्रायमें भावकी अपेक्षा एकत्व है ।

ज्ञानत्वं जीवगुणस्तदिह विवक्षावशात् सुखत्वं स्यात् ।
अन्तर्लीनत्वादिह तदेकसत्वं तदात्मकत्वाच्च ॥ ४८९ ॥

लोकदृष्टान्तकी तरह जीवमें भावापेक्षया एकत्वका कथन— इसी प्रकार जीवका जो ज्ञानगुण है वही यहां विवक्षावश सुख हो जाता है, क्योंकि ज्ञानमें सुख अन्तर्लीन है । आत्म वस्तु तो एक ही अखण्ड पदार्थ है, वह जैसा है सो ही है, उसका स्वभाव एक है और प्रतिसमय परिणमन भी एक है । अब उस एक अखण्ड द्रव्यको समझनेके लिए भेददृष्टिसे भावभेद करके समझाया जाता है । जब भावभेद करके बताया जाता तो वहाँ यह समझाना होता है कि जो जानता है सो जीव है, जो दीखता है सो जीव है, जो किसी ओर उपयोग लगाता है सो जीव है, जो आनन्द स्वरूप होता है सो जीव है ऐसा भेद भाव करके बतानेपर भी जीव वही पूरा जाननहार है, जीव वही पूरा देखने वाला है वही जीव पूरा आनन्दमय है । वहां ऐसी कल्पना न करना चाहिए कि जीवमें ज्ञान, दर्शन, आनन्द आदिक ये भिन्न-भिन्न पदार्थ तत्त्व हैं और उनका समवाय करके फिर अखण्ड बनाकर एकको एक बताया गया हो । तो वही जीव पूरा ज्ञानमय है, वही जीव उन्हीं सम्पूर्ण प्रदेशोंमें

आनन्दमय है। इस तरह आत्माके सब प्रदेशोंमें ज्ञानगुण है और उन्हीं सब प्रदेशोंमें आनन्द आदिक गुण भी हैं। तो उन प्रदेशोंकी दृष्टिसे यह विदित होता है कि एक गुणमें सभी गुण समाये हुए हैं और इसी अवस्थाको बतानेके लिए पदार्थमें विभुक्त गुण भी माना गया है। विभुक्त गुणका तात्पर्य यह है कि एक गुणमें अनेक गुण व्यापक हो जाते हैं। इसी प्रकार सभी जीवमें तादात्मकता होनेसे पदार्थ एक सत्ता वाला कहलाता है।

ननु निर्गुणा गुणा इति सूत्रे सूक्तं प्रमाणतो वृद्धैः ।
तत् किं ज्ञानं गुण इति विवक्षितं स्यात् सुखत्वेन ॥ ४६० ॥

एक गुणमें अन्य गुणोंकी अन्तर्लीनताके सम्बन्धमें शङ्काकारकी शङ्का शङ्काकार शङ्का करता है कि पुरातन आचार्योंने सब युक्तिसे विचार करके गुणोंको निर्गुण बताया है और सूत्रजीने भी ऐसा ही कहा है कि गुण गुणरहित होते हैं द्रव्य गुणवान है, गुण गुणवान नहीं हुआ करते। तो जब गुणोंको निर्गुण कहा है तो इस प्रसङ्गमें यह कहा जा रहा है कि ज्ञानगुण सुखरूपसे विवक्षित हो जाता है। जब स्वरूप जुदा-जुदा है तो उनमें अन्तर्लीनताकी बात कही कैसे जाय ? सूत्रजीमें जो गुणोंका स्वरूप कहा गया है वह यथार्थ विदित होता है। जो द्रव्यके आश्रय हों और गुणरहित हों उन्हें गुण कहते हैं। गुण सभी द्रव्योंके आश्रय रहा करते हैं और गुणों में अन्य गुण नहीं हैं। गुणोंमें कोई गुण हो उसका अर्थ यह बन जायगा कि वह गुणवान है और जो गुणवान है वह द्रव्य कहलायगा। तो गुणोंको निर्गुण कहना युक्तिसङ्गत है किन्तु यहाँ तो गुणोंमें गुण बताये जा रहे हैं ये किस प्रकार सम्भव हैं? अब इस शङ्काके उत्तरमें कहते हैं।

सत्यं लक्षणभेदाद्गुणभेदो निर्विलक्षणः स स्यात् ।
तेषां तदेक सत्त्वादखण्डित्वं प्रमाणतोऽध्यक्षात् ॥ ४६१ ॥

उक्त शङ्काके समाधानमें गुणभेदोंकी निर्विलक्षणताका प्रतिपादन— शङ्काकारका उक्त कथन किसी प्रकार ठीक हो सकता है लेकिन सर्वथा ऐसा न कहना चाहिए क्योंकि लक्षणभेदसे गुणोंमें जो भेद है वह भेद निर्विलक्षण है। जैसे एक आत्मामें ज्ञानगुण है आनन्दगुण है और ज्ञानका लक्षण है प्रतिभास जानन और आनन्दका अर्थ है निराकुलता, आल्हाद। तो लक्षणका भेद भले ही उन गुणोंमें है, लेकिन वह गुण है, वह विशेष है उस ही एक आत्माके। अतएव उस एक आत्मद्रव्य की दृष्टिसे, आधारकी दृष्टिसे वे सभी गुण एकतान होकर उन ही प्रदेशोंमें रह रहे है। और रहते क्या हैं ? वे गुण स्वयं स्वतन्त्र द्रव्य नहीं है किन्तु उस एक आत्मद्रव्य

की ये सब विशेषतायें हैं। अतएव यह जो गुणोंका भेद है वह विलक्षण नहीं है। निर्विलक्षण है। अपने आपके द्रव्यमें अविरुद्ध और तादात्म्यरूपसे है। उन सब गुणों की सत्ता एक है। इस कारणसे वे सब गुण अखण्डित हैं और खण्डित गुणोंके लक्ष्य से द्रव्यकी अखण्डता भी प्रतीत हो जाती है। यह बात प्रत्यक्ष प्रमाणसे विदित होती है। जैसे उदाहरणमें किसी स्कंधको ही लें। एक आम्रफलमें रूप है तो क्या वहाँ यह विभाग है कि रूप अन्य जगह है, रस अन्य जगह है और क्या रूपकी सत्ता कुछ अन्य रूपसे विदित होती है? और रसकी सत्ता कहीं अलग रहती हो? वही आम्र फल अभी रूपसे जाना जा रहा है जब कि चक्षु इन्द्रियके द्वारा उसे विषय किया जा रहा है लेकिन वही आम्रफल रसना इन्द्रियके द्वारा विषय किया जानेपर रसरूप विदित हो जाता है। तो जैसे वहाँ रूप, रस आदिककी सत्ता जुदी नहीं है, एक ही तत्व है, इसी प्रकारसे प्रत्येक सतमें जितने भी भाव हैं, गुण हैं वे सब कहीं जुदे-जुदे नहीं हैं। वह एक ही द्रव्य इन अनेक विशेषोंके रूपमें प्रतीत होता है।

तस्मादनवद्यमिदं भावेनाखण्डितं सदेकं स्यात् ।
तदपि विवक्षावशतः स्यादितिसत्रं न सर्वथेति नयात् ॥४६२॥

भावापेक्षया सत्के एकत्वके कथनकी निर्दोषता इस समस्त उक्त कथन से यह बात निर्दोषरूपसे सिद्ध हो जाती है कि सत् भावकी अपेक्षासे एक है, अखण्डित है चूंकि वस्तु द्रव्य पर्यायमय है और उस वस्तुके वर्णन करनेका प्रकार भी द्रव्यार्थिक नय और पर्यायार्थिकनय इन दो विधियोंमें होता है। तो जब हम उस सत्को सामान्य भाव दृष्टिसे देखते हैं सर्व जीवोंको भाव है, इस रूपसे ही जब हम देखते हैं तो भले ही जीवोंकी अनेक पंक्ति बना ली जाय तब भी वह भाव सामान्यात्मक विदित होता, और यों द्रव्यार्थिकनयके अभिप्रायमें भावकी अपेक्षासे वस्तु एक है यह बात एक द्रव्यार्थिकनयके अभिप्रायमें भावकी अपेक्षासे वस्तु एक है, यह बात एक द्रव्यार्थिकनयकी विवक्षासे जान लो, किन्तु सर्वथा ही ऐसा हो यह बात न समझना चाहिए। स्याद्वाद की मुद्रा जिन वाक्योंमें होती है वह वाक्य समीचीन अर्थको प्रकट करता है, इस कारण यह फलित अर्थ लेना कि द्रव्यार्थिकनयके भेदकी अपेक्षासे भी सत्में एकत्व सिद्ध होगा यह प्रसंग सत्में एकत्व और अनेकत्वको बतानेका चल रहा है, जिसमें सत्की एकताका यह कथन समाप्त होता है। अब द्रव्यार्थिकनयकी अपेक्षासे सत्में अनेकत्व है इस बातका वर्णन करते हैं।

एवं भवति सदेकं भवति न तदपि च निरंकुशं किन्तु ।
सदनेकं स्यादिति किल सप्रतिपक्षं यथाप्रमाणाद्वा ॥४६३॥

सत्के कथंचित् एकत्वके वर्णनके अनन्तर सत्के कथंचित् अनेकत्वको

सिद्धिकी सूचना–इस प्रसङ्गमें सत्को द्रव्य, क्षेत्र, काल, भावकी अपेक्षासे द्रव्यार्थिकनयके अभिप्रायमें एक सिद्धि की गई है इस प्रकार सत् एक है, फिर भी यह निर्णय रखना कि सत् सर्वथा एक नहीं है. किन्तु कथंचित अर्थात् द्रव्यार्थिकनयके अभिप्रायसे वही सत् अनेक है। इसका कारण यह है कि वस्तु परिमाणके अनुसार सप्रतिपक्ष हुआ करता है गुरुत्व धर्मसे युक्त पदार्थ होता है जैसे कोई भी वस्तु ले लो, एक पुस्तकको ही ले लो, पुस्तक पुस्तककी अपेक्षासे है, बेंच आदिकके स्वरूपसे नहीं है, तो उस पुस्तकमें यह बात स्वभावसे पड़ी हुई है कि वह अपने स्वरूपसे हो, पर स्वरूपसे न हो। तो पुस्तककी सत्ता तब ही सम्भव है जब कि सप्रतिपक्ष धर्म माना गया हो। तो जब वस्तुमें यहां एकत्व सिद्ध किया जा रहा है तो अन्य दृष्टिसे उसमें अनेकत्व भी सिद्ध होता है। इसी बातको द्रव्य, क्षेत्र, काल, भावकी दृष्टिसे वस्तुमें अनेकत्वकी बात कह रहे हैं।

अपि च स्यात् सदनेकं तद्द्रव्याद्यैरखण्डितत्त्वेऽपि ।
व्यतिरेकेण विना यन्नान्वयपक्षः स्वपक्षरक्षार्थम् ॥ ४६४ ॥

द्रव्य क्षेत्र काल भावकी अपेक्षासे व्यतिरेकनयके आशयमें सत्के अनेकत्व की सिद्धिका उपक्रम सत् अनेक है इस बातकी सिद्धिमें एक युक्ति यह भी है कि द्रव्यादिककी अपेक्षासे वह सत् अभी अखण्डित सिद्ध होता है सो ठीक है, वहां अन्वय दृष्टि है। लेकिन जब व्यतिरेक दृष्टिसे निरखते हैं तो यही सत् अनेक सिद्ध होता है। और अन्वय व्यतिरेक दोनों दृष्टियोंसे निरखनेकी बात सङ्गत भी है, क्योंकि व्यतिरेक के बिना अन्वयपक्ष अपने पक्षकी रक्षा नहीं कर सकता। यदि व्यतिरेक न माना जाय तो वहाँ अन्वय भी नहीं ठहरता। कोई भी पदार्थ है वह है, अपनेमें है, सदाकाल है तिसपर भी यह मानना ही होगा कि वह अन्य पदार्थसे भिन्न है तो द्रव्य, क्षेत्र, काल भाव चार दृष्टियोंसे वहाँ व्यतिरेक भी सिद्ध है और चार दृष्टियोंसे अन्वय भी सिद्ध है। तो जब अन्वय व्यतिरेक रूप हमारे जाननेकी विधि है और वस्तु स्वरूप भी है तो दोनों दृष्टियोंसे हमें दोनों विषय जानने ही होंगे। तो इस तरह अन्वय दृष्टिमें द्रव्य एक है तो व्यतिरेक दृष्टिसे द्रव्य अनेक भी है। अब द्रव्य एक है इस बातका वर्णन तो द्रव्य, क्षेत्र, काल, भावकी अपेक्षासे किया हो गया है। अब वक्तव्य विषय यही है कि सत् द्रव्य, क्षेत्र, काल भावकी अपेक्षासे अनेक है, तो इसी विषयको क्रमसे कहा जा रहा है कि द्रव्य दृष्टिसे वह सत् अनेक किस प्रकार है ? द्रव्यको प्रधानतासे निरखा और वहाँ परस्पर व्यतिरेक भी दीखे यह किस प्रकार सम्भव है? इस बातका अब वर्णन करेंगे।

अस्ति गुणस्तल्लक्षणयोगादिह पर्ययस्तथा च स्यात् ।
तदनेकत्वे नियमात सदनेकं द्रव्यतः कथं न स्यात् ॥ ४६५ ॥

असंख्याते नजर आते हैं और उन प्रदेशोंकी दृष्टिसे सत् अनेक सिद्ध होते हैं। तो जैसे सत् अभेद क्षेत्रकी अपेक्षासे व्यतिरेक विशेष प्रदेशकी दृष्टिसे अनेक देखा जा रहा है, यों सत् क्षेत्रकी अपेक्षासे अनेक सिद्ध होते हैं।

यत्सत्तदेक काले तत्तत्काले न तदितरत्र पुनः ।
अपि सत्तदितरकाले सदनेकं कालतोऽपि तदवश्यम् ॥४६७॥

कालापेक्षया सत्का कथंचित् अनेकत्व— अब इस गाथामें कालकी अपेक्षा से सत्में अनेकत्व सिद्ध किया जा रहा है, जो भी पदार्थ हैं वे परिणमनशील हैं, प्रति-समय अपना परिणमन बनाये रहते हैं। तो ये परिणमन अनादिसे चले आ रहे हैं और अनन्तकाल चलते रहेंगे। अब जब पदार्थ जिस परिणमनमें है तब पर्यायरूप ही नजर आता है उस समय वह सत् उस पर्यायरूप है तो जिस कालसे जो सत् है वह उसी कालसे है उससे भिन्न कालमें नहीं है। जैसे जीव जब मनुष्यभवमें है तब मनुष्य रूप है, मरकर देव पर्यायमें गया तो वह देवरूप है। अब देव पर्यायमय जो सत् है, जीव है वह मनुष्य पर्यायरूप तो नहीं है, उसकी आदत प्रवृत्ति अब सब कुछ देव पर्याय रूप है, मनुष्य पर्यायरूप नहीं है। तो जिस कालमें जो सत् है वह उसी कालमें है, उससे भिन्न अन्यकालमें नहीं है, इसी प्रकार जो सत् अन्य कालमें है वह उसी कालमें है, उससे भिन्न कालमें नहीं हैं, इस कारण कालकी अपेक्ष भी सत् अनेक ही सिद्ध होते हैं। काल दृष्टिसे सत्को अनेक माननेका तरीका सुगम है क्योंकि हमको जब भी पदार्थ कुछ भी दृष्टगत होता है, पर्यायसे रहित केवल द्रव्य दृष्टगत नहीं होता, और जब जिस पर्यायमें है पदार्थ उस पर्यायमय ही वह दृष्टगत होगा। जब पर्याय बदलती है, दूसरी क्षण भिन्न पर्यायमें वह द्रव्य होता है तो वह प्रकट नजर आ जाता है कि जो द्रव्य पहिले था सो अब नहीं है। उस पर्यायमें उस रूप था, अब इस पर्यायरूप नहीं है। तभी तो किसी वृद्धकी प्रवृत्ति बालकरूपसे नहीं हो पाती, क्योंकि वह पर्याय न रहा वह द्रव्य जिस पर्यायमें है उस पर्यायरूप उसका आचरण होगा यह तो एक ही पर्यायमें भिन्न-भिन्न स्थितिकी बात है, किन्तु कोई मनुष्य मरकर घोड़ा हो गया तो अब उस पशु पर्यायमें मनुष्य जैसी वृत्ति न कर सकेगा, घोड़ेकी तरह ही चलना, बैठना खाना आदि सब कुछ होगा और विचार भी उसी प्रकारके होंगे। तो जिस पर्यायमें जब जो जीव होता है तब उस पर्यायके अनुरूप ही अनुभव होता है। यों जिस कालमें जो पदार्थ है वह उस कालमें है अन्य कालमें रहने वाला पदार्थ उससे भिन्न है, इस तरह कालकी दृष्टिसे सत्में अनेकत्व सिद्ध होता है।

तन्मात्रत्वादेको भावो यः स न तदन्यभावः स्यात् ।
भवति च तदन्यभावः सदनेकं भावतो भवेन्नियतम् ॥ ४६८ ॥

द्रव्यापेक्षया सत्का कथंचित् अनेकत्व— इस गाथामें द्रव्यकी अपेक्षासे सत् का अनेकत्व दिखाया जा रहा है। यद्यपि द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव आदिककी अपेक्षा वस्तु अखण्डित है जिसमें कि द्रव्य अपेक्षा भी अखण्डितपना आयगा तो भी द्रव्य क्या वस्तु है ? अब व्यतिरेक दृष्टिसे अथवा विशेषरूपसे उसका विवरण करते हैं तो यह कहना पड़ेगा कि गुण और पर्यायका पिण्ड द्रव्य कहलाता है। अब यहाँ द्रव्यको जब विशेष दृष्टिसे देखा तो वहाँ गुण और पर्याय नजर आया। तो गुण रूपसे द्रव्य दीखा पर्याय रूपसे द्रव्य दीखा और इसका लक्षण है पृथक-पृथक। जो गुणका लक्षण है वह पर्यायका नहीं जो पर्यायका लक्षण है वह गुणका नहीं। गुण कहलाता है सहभावी, पर्याय होता है क्रमभावी। गुण होता है शाश्वत् पर्याय होता है विनश्वर। तो गुण और पर्यायका जब लक्षण पृथक पृथक है तो सिद्ध हो गया कि वह द्रव्य अनेकरूप है गुणरूप है, पर्यायरूप है। और उन गुणोंमें भी गुण अनेक हैं पर्याय भी अनेक हैं। तो जब यों विशेष दृष्टिसे पदार्थको निहारा तो वह अनेक रूप दीखा। तब द्रव्य दृष्टिसे सत् अनेक कैसे न हो जायेंगे ? जैसे कि पहिले अभेद सामान्य अन्वय दृष्टिसे द्रव्यको देखा था तो सर्वत्र वही सत् एक प्रतीत होता था लेकिन जब व्यतिरेक विशेष दृष्टिसे सत्को निहारा जा रहा है तो जो गुण है वह पर्याय नहीं और द्रव्य गुणरूप है, पर्याय रूप है। इस तरह द्रव्य अनेकरूप सिद्ध होता है। यों द्रव्य दृष्टिसे सत् अनेक हैं।

यत्सत्तदेकदेशे तद्देशे न तद् द्वितीयेषु।
अपि तद् द्वितीयदेशे सदनेकं क्षेत्रतश्च को नेच्छेत् ॥४६६॥

क्षेत्रापेक्षया सत्का कथंचित् अनेकान्त—अब क्षेत्र दृष्टिसे सत्को अनेक देखा जा रहा है। क्षेत्रदृष्टिसे सत् एक विस्ताररूपमें ही तो दीखेगा और वह विस्तार प्रदेशकी अपेक्षासे दृष्टगत होगा अर्थात् यह सत् इतने विस्तारमें है, अब एक परमाणु जितनी जगहको रोकेगा उतनेका नाम है एक प्रदेश। इस भावसे यह पदार्थ कोई असंख्यात प्रदेशी है कोई अनन्तप्रदेशी है, कोई एक प्रदेशी है। तो अब जो असंख्यात् प्रदेशी है अथवा अनन्त प्रदेशी है क्षेत्र दृष्टिसे निहारनेपर वहाँ प्रदेश अनेक दीखेंगे। और उन प्रदेशोंमें यह विभाग समझमें आयगा। विवेक दृष्टिगत होगा कि जो एक प्रदेशी है वह दूसरा प्रदेशी नहीं है। तो जो सत् एक प्रदेशमें है वह उस ही देशमें है, दूसरे देशमें नहीं है। इसी प्रकार दूसरे प्रदेशमें जो सत् है वह दूसरे प्रदेशमें ही है अन्य प्रदेशमें नहीं है। यद्यपि सामान्य क्षेत्र दृष्टिसे वह सत् अखण्ड प्रतीत हो रहा था किन्तु यहाँ विशेष दृष्टिसे देखा जा रहा है तो सत्में प्रदेश असंख्यात् हैं यह मानना होगा कि जो एक प्रदेशी है सो ही दूसरा नहीं है। अगर एक प्रदेश अन्य प्रदेशरूप हो जाय तो वहाँ एक प्रदेशपना ही रह गया, असंख्यात प्रदेश या अनन्त प्रदेश न रह सकेंगे और हैं वे सब। तो क्षेत्रमें जब हम विशेष दृष्टि करके देखते हैं तो वहाँ प्रदेश

भावापेक्षया सत्का कथंचित् अनेकत्व—अब भावकी अपेक्षासे पदार्थमें अनेकत्व दिखाया जा रहा है। पदार्थ अनेक भाव स्वरूप है, यद्यपि द्रव्य दृष्टिसे एक स्वभावमात्र है, किन्तु जब उसका विश्लेषण करते हैं, उसका प्रतिपादन करते हैं तो अनेक गुणोंके रूपमें उस तत्त्वको कहा जाता है। जैसे आत्मा, ज्ञान, दर्शन, चारित्र, आनन्द आदिक गुणोंसे सम्पन्न है तो ये सब भाव ही हुए। तो इन भावोंमें जब जिस भावरूपसे विवक्षित होता है यह जीव उस समय वह उस भावमय है। यों तन्मात्र होनेसे जो एक भाव है वह अन्य भावरूप नहीं हो सकता। लक्षणकी विशेषता भी इसी प्रकार है। जो जानना है सो ही तो ज्ञान है और जो आह्लाद है सो आनन्द है तो प्रत्येक गुणोंका लक्षण भी भिन्न-भिन्न है। तो जब जिस भावरूपसे विवक्षित हो तब उस भावमय है, अन्य भावमय नहीं है। इसी प्रकार जब अन्य किसी भावसे विवक्षित है तब वह अन्य भावरूप ही है, उससे भिन्न अन्य भावरूप नहीं है।

शेषो विधिरुक्तत्वादत्र न निर्दिष्ट एव दृष्टान्तः।
अपि गौरवप्रसङ्गाद्यदि वा पुनरुक्तदोषभयात् ॥ ४९९ ॥

सतके कथंचित एकत्व अनेकत्वसे सम्बन्धित शेष परिचयका स्मरण—इस प्रसङ्गमें सतमें एकत्व और अनेकत्व सिद्ध किया गया है। इससे सम्बन्धित अन्य बातें भी समझनी चाहिएं, जिनका कथन पहिले भी कर दिया गया है। जैसे कि उस सतको सर्वथा एक नहीं कह सकते। यदि सर्वथा एक कह दिया जाय तब उसमें कोई परिणमन ही न हो सकेगा। परिणमन तब होता है जब वहां अनेकता समझमें आती है। तो अनेकत्व माने बिना पदार्थ परिणमन शून्य ही हो जायगा। इसी प्रकार यदि पदार्थको सर्वथा अनेकरूप मान लिया जाय तो भी उसमें परिणतियाँ न हो सकेंगी। वे अनेक रूप भिन्न-भिन्न स्वतंत्र पदार्थ हो गए अब क्योंकि उन्हें सर्वथा ही सत मान लिया गया। तो जब वे ही पर्यायें सर्वथा परिपूर्ण स्वतन्त्र सत हो गए तो परिणतियाँ किसकी बतायी जायें। वे परिणतियाँ ही न रहें, तो सर्वथा एक माननेपर भी दोष है, सर्वथा अनेक माननेमें भी दोष है। तो यहाँ जो दो भङ्ग बताये गये हैं कि वस्तु स्यात् एक है, स्यात् अनेक है तो अन्य भङ्ग भी इस प्रसङ्गमें लगा लेना चाहिए।

तस्माद्यदिह सदेकं सदनेकं स्यात्तदेव युक्तिवशात्।
अन्यतरस्य विलोपे शेषविलोपस्य दुर्निवारत्वात् ॥ ५०० ॥

सतके कथंचित एकत्व व अनेकत्वका समर्थन—इस कारण यह सिद्ध होता है यहाँ कि जो सत एक है वही सत अनेक है। एक अनेकमेंसे यदि किसीका भी लोप कर दिया जाय न माना जाय तो शेषका लोप अपने आप होजाता है। जैसे सत को अगर अनेक न मानें तो इसका अर्थ है कि उसमें विशेष नहीं है, परिणमन नहीं है। तो परिणमनरहित, विशेषरहित कोई पदार्थ हो ही नहीं सकता। तो इस तरह उसका लोप हो जायगा अथवा अनेक है यह नहीं माना गया, वस्तु सर्वथा एक ही है,

तो एक ही है यह वक्तव्य कैसे होगा ? उसमें परिणमन कैसे समझमें आयगा ? तो परिणमन शून्य हो जानेसे उस एकपनेका भी अभाव हो जायगा, एकत्व भी सिद्ध न हो सकेगा। इस कारण मानना ही पड़ेगा कि वस्तु कथंचित एक है और वही वस्तु युक्तिपथसे कथंचित् अनेक है। इस तरह पदार्थ एक अनेकात्मक है।

अपि सर्वथा सदेकं स्यादिति पक्षो न साधनायालम् ।
इह तदवयवाभावे नियमात् सदवयविनोऽप्यभावत्वात् ॥५०१॥

सर्वथा एकत्वके पक्षमें वस्तुत्वसाधनकी अक्षमता—सत् सर्वथा एक है यह पक्ष भी वस्तुकी सिद्धि करनेमें समर्थ नहीं है। जब सत्को सर्वथा एक मान लिया तो किसी भी प्रकार उसमें भेद दृष्टि न बनायी जा सकेगी। और तब उसका कोई अवयव न जाना जा सकेगा। गुण पर्याय आदिकका भेद भी न बन सकेगा। तो जब अवयवका अभाव हो गया तो समझिये कि अवयवी सत्का भी अभाव बन जायगा, फिर सत्को किसी प्रकार सिद्ध न कर सकेंगे। अनुभवसे भी सोचिये कि वह सत् क्या है जिसमें न शक्ति है, न परिणमन है। वस्तुमें नाना परिणमन होते हैं उनकी अपेक्षासे तथा उसमें नाना शक्तियाँ होती हैं, उनकी अपेक्षा से जब वहाँ अनेकत्व किसी प्रकार भी न परखा जा सका तो वस्तु ही क्या समझमें आ सकेगा ? अतः सर्वथा एक मानने पर भी वस्तु स्वरूपकी सिद्धि नहीं होती।

अपि सदनेकं स्यादिति पक्षः कुशलो न सर्वथेति यतः ।
एकमनेकं स्यादिति नानेकं स्यादनेकमेकैकात् ॥५०२॥

सर्वथा अनेकत्वपक्षमें वस्तुत्वसाधनकी अक्षमता—सत्को सर्वथा अनेक माननेका पक्ष भी कुशल पक्ष नहीं है, क्योंकि जहाँ सर्वथा अनेक मान लिया गया, एक की कल्पना भी न हो सकी तो वहाँ वस्तु क्या सिद्ध होगा ? अनेक भी तो एक ही हुआ करते हैं, अर्थात् वस्तु एक है फिर उसमें परिणतियाँ अनेक हैं गुण अनेक हैं। कितने ही अनेक मान लिए जायें पदार्थ, पर प्रतिव्यक्ति एकत्व तो मानना ही पड़ेगा। कोई भी वस्तु अनेक अनेक मिलकर नहीं बना करती। वस्तुतः स्वयं सत्स्वरूप है, एक है, स्वतःसिद्ध है, उस स्वतःसिद्ध वस्तुको नाना दृष्टियोंसे अनेक परखा जाता है। यों वस्तुको सर्वथा अनेक भी नहीं कह सकते। तब वस्तुका जो लक्षण बताया गया था कि वस्तु सत्तामात्र है, स्वतःसिद्ध है, अनादि अनन्त है ऐसी वह सन्मात्र वस्तु वही भेद दृष्टिसे अनेकरूपसे निरखी जाती है। मूल कुछ एक है तब उसमें शक्ति गुण आदिक बताये जा सकते हैं। तो यों वस्तु सर्वथा अनेक भी नहीं कही जा सकती अतः मानना चाहिए कि वस्तु जैसे द्रव्यादिककी अपेक्षा एक रूप है उसी प्रकार द्रव्यादिककी अपेक्षा पर्याय दृष्टिमें सत् अनेकरूप है। यों वस्तु कथंचित् एक और कथंचित् अनेक सिद्ध होती है।